आत्मा का सेवक मन


श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

1. आत्मा का सेवक मन

जब मत्यु नहीं होती है, वहाँ मृत्यु का भय क्यों होने लगा। मेरे पुत्रों! हमें प्रभु के राष्ट्र पर विचार विनिमय करना है। यह संसार तो परम्परा से ही सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से ही बंधा हुआ नृत्य कर रहा। परन्तु आज से नहीं, परम्परा से ही संसार में कहीं देवासुर संग्राम हो रहा है, कहीं एक राष्ट्र दूसरे को नष्ट कर रहा है। कहीं भौतिक विज्ञान विशेष बलवती हो गया, तो वह विनाश को प्राप्त हो गया। परन्तु वही विज्ञान जब आध्यात्मिकवाद में परिणित हो गया तो प्रकाश में चला गया। विज्ञान का सदुपयोग उससे हो गया।

परन्तु विचारना यह है कि हमें अपने कार्य में कितना व्यस्त रहना है। मानव को इस अपने मनीराम को सान्तवना नही देनी है। यह जब सान्तवना को प्राप्त होता है तब ही यह मानव की मृत्यु ले आता है, मानव की वहीं मृत्यु हो जाती है।

एक वाक्य मुझे स्मरण आ गया, पुत्रो! जो मैंने बहुत पुरातन काल में भी प्रकट किया था। एक समय राजा के यहां एक सेवक पहुंचा। राजा ने कहा, अरे तुम कौन हो? महाराज, मैं सेवक हूँ। क्या तुम सेवा करना चाहते हो? उसने कहा कि महाराज! मैं सेवा करने के लिए ही आया हूँ। राजा ने पूछा क्या वेतन लोगे? उसने कहा, मैं कोई वेतन नहीं लूंगा। मेरी एक प्रतिज्ञा है, वह आपको पूर्ण करनी होगी। राजा ने कहा क्या प्रतिज्ञा है? सेवक ने कहा कि जिस समय मुझे कार्य प्राप्त नहीं होगा, उसी समय मैं आपको मृत्यु को प्राप्त करा दूंगा। उन्होंने कहा ये तो बहुत प्रिय है। राजा ने स्वीकार कर लिया। अब बेटा! राजा कार्य उच्चारण करता और उनका कार्य होने लगा। अब कुछ ही समय में राजा के यहाँ, कार्य देने के लिए सूक्ष्मता गई।

राजा का स्वास्थ्य बड़ा प्रिय था। अब मृत्यु के भय से मुनिवरों! देखों! वह भयभीत रहने लगा। वह स्वस्थ भी नहीं रहा। उस सेवक से भयभीत था। मृत्यु नहीं चाहता था, राजा। उस समय कोई बुद्धिमान पुरूष राजा को प्राप्त हुआ। उसने कहा, अरे राजन्! तुम्हारा स्वास्थ्य तो बड़ा प्रिय था। तुम कैसे बन गए हो? राजा ने सब गाथा, उस बुद्धिमान से वर्णन की, जो योगेश्वर थे। राजा ने कहा कि महाराज! मैं मृत्यु से कैसे बच सकूँगा? उन्होंने कहा तुम उस सेवक को अपने व्यक्तिगत कार्यों में

क्यों लगा रहे हो? उसे संसार के कार्य में परिणित कर दो।

मेरे प्यारे! देखों संसार का क्या कार्य है? "कर्म ब्रह्मे कृताम्" संसार का भी कार्य नहीं है, तुम्हें तो इतना ज्ञान है, तो देखो, एक दण्ड पृथ्वी में स्थापित करो और उससे कहो कि इस पर ऊर्ध्वा में, ध्रुवा में, ध्रुवा में, ऊर्ध्वा में जाओ। राजा ने वाक्य स्वीकार कर लिया और उसने अपनी राज्य स्थली पर एक दण्ड पृथ्वी में स्थापित कर दिया और मुनिवरो! सेवक से कहा, सेवक तुम इस पर आओ जाओ, ग मन करते रहो। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, अच्छा भगवन्। तो सेवक उस पर ग मन करने लगा और फिर उससे छुटकारा कहाँ? सेवक को लगातार कार्य प्राप्त होता था। मेरे प्यारे! राजा अपनी मृत्यु से बच गया, उसने अपनी मृत्यु नहीं होने दी।

मेरे प्यारे! वह सेवक, राजा और बुद्धिमान कौन हैं? इसके ऊपर विचार किया जाए। बेटा! राजा तो यह शरीर है जिसमें आत्मा विराजमान है और बुद्धिमान इसमें बुद्धि है, ज्ञान है, परन्तु यह जो मन रूपी सेवक ऐसा विचित्र है। दण्ड क्या है, तो उससे कहा कि तुम यह जो प्राण रूपी दण्ड है, इस प्राण रूपी दण्ड पर ग मन करते रहो।

मेरे प्यारे! मन और प्राण का मिलान ही मुक्ति कहलाती है, मन और प्राण के मेल को योग कहते हैं। मन और प्राण के मिलान को ही सृष्टि चक्र को जानना कहते हैं। मन और प्राण की आभा को जानना ही संसार में पितर बनना है।

बेटा! एक सूत्र है और उस सूत्र में यह मन रूपी सेवक कटिबद्ध हो जाता है, एकाग्र बुद्धि होने पर मानव बुद्धिमान क्या योगेश्वर बन जाता है, वह विवेकी बन जाता है। उसे क्रोध अब्रहेः और भी नाना प्रकार की मात्रा नही आती।

जो मानव इस संसार में अपना कल्याण करना चाहता है, अपनी मानवीयता को महान बनाना चाहता है, वह मन रूपी सेवक को प्राण स्थली पर ओतप्रोत करा देता है। हमारे यहां आध्यात्मिक विज्ञानवेता, यहां इस भौतिक विज्ञान के मार्ग को ही जान करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है। यह मन का जानना। प्राणों को जानना, यह मुनिवरों, देखो, भौतिकवाद है। पंच महाभूत इसी से कटिबद्ध है। मानव इसे जानकर ही आध्यात्मिक वाद में प्रवेश है।

आज का संसार मन की रश्मियों को जानने में ही लगा है। मन की तरंगों में तरंगित होता रहता है। उसी को अपना प्रकाशवत स्वीकार कर लेता है। मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु कहलाया गया है, जो बहुत गतिमान है। इस मन को जानने वाला प्रकृति से एक-एक कण को जान लेता है। इसके ऊपर जब योगी का आत्मा बैठ जाता है, तो उस समय यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का दर्शन करा देता है, और मन को स्वतन्त्र छोड़ने पर कहीं का कहीं रमण करता है। कभी समुद्रों की तरंगों में रमण करता

है, तो कभी सूर्य की आभा में लोक-लोकान्तरों में, जहां गति करता है, वहीं निकृष्ट से निकृष्ट गति भी करने लगता है। इस मन पर नियंत्रण से यह मोक्ष की पगडण्डी को धारण कर लेता है। प्रवृत्तियों पर जब संयम हो जाता है, तो यह मन आत्मलोक में चला जाता है।

मन वायु से भी तीव्र गति वाला है। इस मन को संसार के शुभ कार्य में लगा दो, यह मन तुम्हे इन्द्रलोक तक पहुंचा देगा। इस मन को स्थिर करो। यह तुम्हें बहुत ऊंचा पहुंचा देगा। (790308)

बेटा! यह आत्मा, मन को आज्ञा देता है कि प्रकृति के गर्भ से कुछ लाकर उपस्थित करो।-पूज्यपाद गुरुदेव।

आत्मा का सेवक मन


श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

2. आत्मा का सेवक मन

एक द्रव्यपति थे, उनके द्वार एक सेवक जा पहुँचा, और उनसे कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। द्रव्यपति ने कहा क्या, वेतन लोगे? उस सेवक ने कहा, महाराज! मैं वेतन कुछ नही लूंगा परन्तु मेरा एक नियम है, कि जब मुझे कार्य करने को नहीं मिलेगा, तो तब ही मैं आपको मृत्यु प्राप्त करा दूंगा। द्रव्यपति ने कहा कि अच्छा, तुम मेरे द्वारा कार्य करो। वह सेवक द्रव्यपति के द्वारा कार्य करने लगा। द्रव्यपति जो उच्चारण करता, सेवक उस कार्य को कर देता। कुछ समय के पश्चात्, उस द्रव्यपति को कोई कार्य उस सेवक को देने को न रहा। द्रव्यपति बहुत चिंतित होने लगा। एक समय मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ एक बुद्धिमान मिला और उसने द्रव्यपति से कहा कि आप तो बड़े थकित होते चले जा रहे हैं। तब उन्होंने सब वार्ता कह सुनाई कि मेरे द्वार पर एक सेवक आया हुआ है। उसने मुझसे वचन लिया हुआ है कि जब उसे कोई कार्य करने को न रहेगा तो वह मुझे मृत्यु को पहुँचा देगा। अब मेरे पास उसको कार्य देने के लिए नहीं रहा है, इसलिए मैं उसके भुजों से नहीं बचूंगा। उस समय बुद्धिमान ने कहा कि भाई! तुम उसको अपने कार्य में क्यों लगा रहे हो, संसार के कार्य में लगा दो। उसको छूटकारा नहीं मिलेगा, और तुम उसके भुजों से बच जाओगे। बुद्धिमान की वार्ता सुनकर द्रव्यपति गृह आया और आकर उसको संसार में शुभ कार्य बता दिया कि जाओ, तुम संसार का कार्य करो, तुम्हें छुटकारा नहीं मिलेगा। वह संसार के शुभ कार्य करने लगा, उसको छुटकारा नहीं मिला और द्रव्यपति उसके भुजों से बच गया। यही दशा मनुष्य के मन की है। यदि मन को संसार के शुभ कार्यो में और परमात्मा के चिन्तन में लगाए रखते हैं, तो तब तक यह यथार्थ रहता है और जब इसको छुटकारा मिला, सङ्कल्प विकल्प आए, तो मनुष्य मृत्यु का सामना करने लगता है।

आत्मा का सेवक मन



3. मन को शुद्ध बनाओ

पूज्यपाद गुरुदेवः कल महानन्द जी ने प्रश्न किया कि हमारे, आपके वाक्य मृत मण्डल में क्यों जाते हैं? यह क्या दशा है जो इस प्रकार आपत्ति काल भोगना पड़ा है? परन्तु आज भी हम इसका उत्तर न दे सके और व्याख्यान देते देते बहुत दूर चले गए। हम उच्चारण कर रहे थे, कि मानव को अपने कार्यों में दृढ़ रहना चाहिए। जो मानव जैसा करता है, वैसा ही भोगता है। बहुत पूर्व काल में हमने जो कर्म किए हैं, आज उन्हीं का फल भोगना पड़ रहा है। इसमें कुछ भी असत्य और न इसमें कोई भ्रान्ति है।

पूज्य महानन्द जीः आपके व्याख्यान तो यथार्थ होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु भगवन्! आधुनिक काल में ऐसे व्यक्ति हैं, जो नाना प्रकार की विद्याओं को अच्छी प्रकार जानते नहीं और न वेदों का स्वाध्याय ही करते हैं। उनके हृदय में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ, नाना प्रकार की अशुद्धियाँ रहती हैं इसलिए उनका निर्णय करना आपका कर्तव्य है।

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी! जिसके द्वारा यथार्थता न हो, जो यथार्थ कार्यों को भी यथार्थ न मान रहा हो, बेटा! वह मानव कदापि नहीं मानेगा। वह तो अन्धकार में पहुँचा हुआ है।

आज हमारे हृदय में वह कौन सा स्थान है, जहाँ परमात्मा यह न्याय कर रहा है? आज हम विचारते हैं और यह उच्चारण करते हैं कि कोई स्थान नहीं, वह तो न्याय है। द्वितीय प्रश्न आता है कि जब कोई स्थान नहीं, तो परमात्मा न्याय कैसे करता है। आज यह एक बड़ा दार्शनिक विषय बन जाता है। आज मानव को विचारना चाहिए कि वह परमात्मा विभु है, तो वह कौन सा विभु है, जहाँ हमारे पाप पुण्य, कर्मों का फल दे रहा है? आज हमें वेदों के अनुकूल प्रतीत होता है कि वह परमात्मा हमारी आत्मा के समक्ष बैठा हुआ है। जो भी मानव कर्म करता है, उसके संस्कार, उसके अन्तःकरण में नियुक्त हो जाते हैं। जब मानव तुच्छ कर्म करने के लिए चलता है तो उस समय मानव को संकेत मिलता है, कि अरे, मानव! यह कुमार्ग है, इस पर न जा। मानव उस कर्म को कर लेता है, तो बेटा! वही कर्म परमात्मा उसके अन्तःकरण में नियुक्त कर देता है। जो बेटा! हमने किया है वह अन्तःकरण

में विराजमान हो गया है, और वह हमें भोगना अनिवार्य है। उसको भोगे बिना हमारा कार्य न चलेगा।

महानन्द जी ने आज हमें एक संकेत किया है, और कई स्थानों में कहा है कि बहुत से मानव ऐसे हैं, जिन्होंने तपस्या करके तुच्छ कर्मों को समाप्त कर दिया है। परन्तु यह नहीं, यह वाक्य तुम्हारा विचित्र है। यह भी देखो, मानने वाला वाक्य बन जाता है। जैसा मानव ने कर्म किया है, उन्हें भोग करके, उसका अन्तःकरण शुद्ध बनेगा। जैसे आज प्रकाश हो रहा है, परन्तु वह प्रकाश उस काल तक रहेगा, जब तक उसमें प्रकाश देने वाले पदार्थ हैं। दीपक जल रहा है, परन्तु उसी स्थान तक प्रकाश देता रहेगा, जब तक उसमें वह पदार्थ है। जब वह पदार्थ न होंगे, तो वह अपना प्रकाश देना समाप्त कर देगा। इसी प्रकार बेटा! हमारा अन्तःकरण है। जब तक अन्तःकरण में संस्कार हैं जब तक हम भोगते रहेंगे।

आज परमात्मा से जिज्ञासु कहता है कि हे परमात्मन्! मेरा हृदय प्रकाश दे रहा है, अब मैं इसमें कोई पदार्थ नियुक्त नहीं करूंगा, जिससे यह प्रकाश देता है। तो मुनिवरों! तब तक उस अन्तःकरण रूपी महान दीपक में कोई पदार्थ नहीं पड़ेगा, तो प्रकाश कदापि नही देगा भोगना भी नही पड़ेगा, जब इसमें नियुक्त करता है, तो भोगना भी अनिवार्य है। यह कैसा सुन्दर वाक्य हमारे समक्ष आ पहुँचा है। महानन्द जी ने हमसे एक स्थान में प्रश्न किया, कि सृष्टि के प्रारम्भ में मानव की आकृति ऐसी थी, जैसे भालू की।

मुनिवरों! आज का वेदमन्त्र तो यह कह रहा था, कि जब महान सृष्टि प्रारम्भ होती है, तो उस समय जो विमुक्त आत्माएं होती हैं, जिन्हें पूर्वकाल का ज्ञान रहता है, वह आत्मा आ करके परमात्मा के नियमों के अनुकूल अपने महान शरीर को धारण कर लेती है। उनसे यह महान संसार बन जाता है। संसार की गति इस प्रकार की हो जाती है। यह व्याख्या हम अधिक न देंगे। यह विषय तो हमारा कल का है, अब तो हमारा यह वाक्य चल रहा था, कि मानव जैसा कर्म करता है, वैसा उसे भोगना अनिवार्य है। अन्तःकरण में उसके संस्कार नियुक्त रहते हैं परन्तु प्रतीत नहीं कि मानव का अन्तःकरण किस काल में जाग जाए, किस काल में समाप्त हो जाए। आज मानव को विचारना चाहिए कि हमने जो कर्म किया है, वह हमें भोगना अनिवार्य हैं इसलिए हमें शुभ कर्म करना चाहिए। जैसे बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने राजा जनक से कहा था, हे जनक! यह मन तो शान्त रहता ही नहीं, यह तो कार्य करता ही रहता है, इसलिए तुम मन को शुद्ध बनाओ। जिससे तुम्हारा जीवन महत्वदायक बन जाएगा। (620309)

मन के शोधन के लिए तप



4. मन के शोधन के लिए तप

महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परणित होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है। (890803)

मन के शोधन के लिए तप



5. मन के शोधन के लिए तप

वेद का आचार्य कहता है। हे ब्रह्मचारियों! वेद का मन्त्र कहता है कि मानव को तपना चाहिए और तपने के पश्चात ही मानो देखो, वह अभ्योदय हो जाता है। जैसे यह संसार का प्रत्येक परमाणु तप रहा है और तपने के पश्चात ही मानो देखो, उसमें नाना प्रकार की वृत्तियो का जन्म हो जाता है और वही मुनिवरों! वही मुनिवरों! देखो, तपोमय कहलाता है। राजा के राष्ट्र में तपा हुआ, जब राजा होता है। तो मुनिवरों! देखो, प्रजा तपों में बन जाती है। यदि राजा तपता नहीं है ब्रह्मज्ञानी नही है। तो मानो देखो, उस राजा की प्रजा बिखर जाती है और वह मुनिवरों! देखो, राष्ट्रीयतव में आने में अधूरापन अपने में वह स्वीकार करने लगता है। इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है। तपं हिरण्यं राजन्मं ब्रह्मे तपाः वेद का मन्त्र कहता है। हे राजन! तू तपस्वी बन और तप मानो देखो, तपों में जब जीवन बन जाता है। तो मुनिवरों! देखो, राष्ट्र पवित्र बन जाता है। महान बन जाता है। विद्यालयों में जब आचार्य तपें हुए होते है। तो ब्रह्मचारी मानो देखो, तपोमय बन जाता है। विद्यालय के पवित्र होते ही, राष्ट्र और समाज पवित्र बन जाते है और मुनिवरों! देखो, इसीलिए वेदमन्त्र कहता है। तपं तपा ममं ब्रह्मणे मात्राणि गच्छतं तपा वेद का ऋषि कहता है कि माता को अपने गृह आश्रम में तपना चाहिए क्योंकि पितर को तपना चाहिए यदि वह तपते है। तो ब्रह्मचारी उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाने का प्रयास करते है।

तो आओ मेरे पुत्रों! देखो, वेदमन्त्र कहता है। तपं तपां हिरण्यं तपं ब्रह्मणा कृतं मेरे प्यारे! देखो, मानो यहाँ संसार का प्रत्येक प्राणी मात्र तप रहा है। लोक लोकान्तर तप रहे है। बेटा! सूर्य प्रातः काल में उदय होता है और वह प्रकाश में तप रहा है और तपने के पश्चात मुनिवरों! देखो, तपो में बन करके, वह तपो में ही संसार की तपाता रहता है। नाना प्रकार की ऊर्ज्वा देता है। चन्द्रमा अमृत देता है। वह मानो देखो, तपायमान करता रहता है। इसीलिए हमें प्रत्येक मानव को तपों में ही रमण करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को तप की महिमा का वर्णन कर रहे थे जब न्यौदा मं उनका उपदेश सम्पन्न हुआ तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि ब्रह्मचारियों मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं तप करने जा रहा हूँ। क्योंकि प्रत्येक मानव को तपना चाहिए।

मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियों ने आचार्य जनों ने एक स्वर में हो करके कहा प्रभु! आप तपने के लिए जाईएं भगवन! क्योंकि विद्यालय में जब आचार्यजन तपे हुए होते है। तो मानो देखो, वह विद्यालय पवित्र होता है और ब्रह्मचारी भी उसकी शिक्षा का अध्ययन करते हुए, अपने में तपो में बन जाते है। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा तो महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा धन्य है, हे ब्रह्मचारियों! अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मेरे पुत्रों! आज्ञा पा करके, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बेटा! देखो, भयंकर वनो में पंहुचे और भयंकर वन में एक स्थली पर विराजमान हो करके न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करने लगे और न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करके उन्होंने कहा तपं ब्रह्मणे तपं रुद्राणि गच्छत तपा मनश्चं ब्रव्हा।

तप के लिए मधु विद्या



6. तप के लिए मधु विद्या

मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि जब एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके, जब वेद का अध्ययन करने लगा, मनो हृदय में मन का अध्ययन करने लगा तो बेटा! देखो, विचार आया कि वेदमन्त्र कहता है कि मनं ब्रव्हे। मानो देखो, मन से सम्बन्धी जितने प्राणी होते है उनको सन्तुष्ट करना चाहिए ब्रह्मवेत्ता को, और जब तक वह सन्तुष्ट नही हो जाते मानो उनके मन का जो तारतम्य है। मन से समन्वय रहता है। हो सकता है कि मन चञ्चल हो जाए, मानो परमात्मा के ध्यानावस्थित न हो, तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने विचारा, मेरी दो पत्नियाँ है। एक का नाम कात्यानी है एक का नाम मैत्रेय है। मुझे दोनों को सन्तुष्ट करना है। जब मुझे तपो में मानो जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने आसन को त्याग दिया, और भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, उन्होंने अपने गृह में उन्होंने प्रवेश किया। और मुनिवरों! सबसे प्रथम वह कात्यानी के आसन पर पंहुचे, और कात्यानी ने बेटा! देखो, उनके चरणों की वन्दना की और एक आसन दिया, आईए भगवन! विराजिए वह विराजमान हो गएं कात्यानी ने कहा प्रभु! देखो, आज बिना सूचना के तुम्हारे आने का कारण क्या है? तुम्हारी प्रथम सूचना आ जाती थी, आज कोई सूचना नही आई, इसका मूल कारण क्या है? याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे देवी! मैं प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्य में, वेदाध्ययन कर रहा था और उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था तो इसीलिए वेद का मन्त्र कहता था तपं हिरण्यं तपं दिव्यां गतं ब्रह्मणे तपः वेद का मन्त्र कहता है कि तपना चाहिए। तो हे देवी! मैं तप करने के लिए मैंने विद्यालय को त्याग दिया है और मैं तप करने जा रहा हूँ। तो वेद मन्त्रों का उच्चारण मेरे स्मरण आया ब्रह्मणे क्रममना वर्णा व्रत्यं मना गच्छं मनं ब्रहे व्रता शुद्धं दधि वृद्धा क्रममना वेद का वाक कहता है। देवी कि जो मन के सम्बन्धित जो प्राणी होते है। उनको सन्तुष्ट करना है। तुम मेरे मन से सन्म्बन्धित हो, इसीलिए मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिए आया हूँ। और मुझे आज्ञा दो कि मैं तप करने चला जाऊँ, मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब ऐसा कहा तो देवी ने कहा कहा प्रभु! यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो मानो

देखो, हमारा देवतव तपस्वी बन जाए तो प्रभु! यह तो हमारा सौभाग्य है, आप तप करने के लिए जाईएं। मेरे प्यारे! जब कात्यानी ने यह कहा कि आप तपं हिरण्यं तपश्चं ब्रव्हा आप तप करने के लिए जाईएं भगवन! और हम यहाँ तप करेंगे। मानो आप तप करने के लिए वनो में गमन करो, मेरे प्यारे! देखो, कात्यानी के मानो यह हृदय ग्राही शब्दों को ग्रहण करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और ऋषि ने कहा धन्य है। हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अब मैत्रेयी के समीप पंहुचे और मैत्रेयी ने भी उसी प्रकार उसको आसन दिया और वह आसन पर विद्यमान हो गएं उन्होंने कहा कहो भगवन! आज बिना सूचना के तुम्हारा कारण क्या है? उन्होंने कहा है। मैत्रेयी मैं आज न्यौदा में वेद मन्त्रों का अध्ययन कर रहा था। प्रातःकालीन परन्तु उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था क्या राजा भी तपा हुआ हो तो राष्ट्र ऊँचा बन सकता है और हम सब जब तक तप में नही जाएंगे अपने जीवन को महान नही बना सकेंगे। तो हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ मेरे पुत्रों! देखो, मैत्रेयी ने कहा प्रभु! आपको यह प्रतीत है। क्या पत्नी जो होती है वह पति मानो देखो, पत्नी के लिए वह अमृता ब्रहे। वह उसी में मानो संलग्न रहती है। हे प्रभु! यदि आप तप करने जा रहे हो तो मेरा क्या बनेगा? महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी! तुम्हें प्रतीत है कि जब मेरा तुम्हारा किसी काल में शास्त्रार्थ हुआ था तो मानो आत्म ज्ञान के ऊपर शास्त्रार्थ हुआ मानो देखो, तुम्हारी आत्मा का जो प्रसंग था वह बड़ा विचित्र था। आज तुम्हारा वह ज्ञान कहाँ चला गया है। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! वह ज्ञान तो मेरे समीप है। परन्तु एको बहुधा की जो कामना है, वह बड़ी विचित्र रहती है। भगवन! हे प्रभु! यदि इसीलिए आप यदि गमन कर जाएंगे तो हम अपने जीवन को अधूरेपन में स्वीकार करेंगे। याज्ञवल्क्य मुनि बोले नही देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि मधु विद्या क्या कहती है। मधु विद्या यही कहती है कि पति जो होता है वह पत्नी तक सीमित रहता है और यदि वह अपने लिए स्वतः पति बन जाएं अपनी आत्म मानो देखो, अपनी इन्द्रियों पर संयमी बन जाए तो उस मानव का कल्याण हो जाए। क्योंकि वह अधिपथ्य करने वाले को पतिवत कहते है। मेरे प्यारे! देखो, जो अपने में संयमी कहलाता है। यदि वह अपने में पति बन जाए मानो अपना ब्रह्मणे कृतं देवा अपने को पति, अधिपथ्य स्वीकार करे। तो बेटा! ऋषि कहता है कि वह अपने में महानता को प्राप्त हो जाए मेरे प्यारे! उन्होंने कहा देवी! पत्नी जो होती है वह पत्नी तक सीमित होती है और यदि वह पत्नी अपने को यह स्वीकार कर ले कि मैं पत्नी हूँ। मेरा अधिपथ्य है इन्द्रियों पर मेरा संयम है। मैं अपनी इन्द्रियों की पत्नी हूँ। तो मानो उसका कल्याण हो जाए, वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाए हे देवी! मानो देखो, वह अपने लिए भी स्वयं पत्नी बन जाए तो कल्याण का मार्ग उसे प्राप्त हो जाएगा मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा देवी! पुत्री जो होती है। वह पिता

तक पुत्री होती है। यदि वह अपने लिए पुत्री बन जाए कि मैं परमपिता परमात्मा की पुत्री हूँ। मानो देखो, जल, अग्नि वायु सब सर्वत्र व परमपिता परमात्मा सन्निधान मात्र से मेरे जीवन को क्रिया दे रहा है। मानो देखो, उसकी आभा में मैं रत्त हो रही हूँ। तो इसीलिए मानो यदि वह अपने लिए मानो पुत्री बन जाए और यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में हूँ। और उसी की मैं पुत्री हूँ तो मानो देखो, मैं पुत्री बन करके यू ही महानता में परणित हो करके परमात्मा को प्राप्त हो जाऊँ महानता में परणित हो जाए मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा हे देवी! पुत्र जो होता है, वह माता तक सीमित होता है यदि पुत्र स्वयं देखो, अपने लिए पुत्र बन जाए तो मानो देखो, उसका कल्याण हो जाए और वह यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा का पुत्र हूँ, परमात्मा के ही आंगन में ही मैं विद्यमान हूँ। परमात्मा ही मानो देखो, जैसे पुत्रवत को सर्वत्र सुविधा देता है। ऐसे ही परमपिता परमात्मा मुझे प्रदान कर रहे है। तो मानो देखो, मैं स्वतः अपने लिए वह पुत्र बन करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त को प्राप्त हो जाऐ हे देवी! संसार में जो भी मानो देखो, वित्तैषणा है। नाना प्रकार की वित्तैषणा में लगा हुआ है। लोकैषणा में लगा हुआ है। मानो यदि वह लोकप्रियता के विचार में रत्त हो जाता है। लोकप्रिय बन जाता है। तो वह मानो देखो, वे परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता में सदैव अपने को ले जाता है और यदि वह मानं ब्रह्मणे कृतं देखो, वित्त अपने आत्म तत्त्व के लिए तृप्त होने के लिए, क्या मैं इससे तृप्त हो जाऊँगा। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है कि यदि वित्त परमपिता को वो स्वीकार कर लें कि यह परमपिता परमात्मा की सम्पदा है। इसका अधिपथ्य मानो देखा प्रभुतव है। तो मुनिवरों! देखो, उस मानव का कल्याण हो जाए वास्तव में देखो, जब संसार में आता है प्राणी जब मुनिवरों! देखो, वह अपने में कोई, द्रव्य स्वामी नही बन करके आता और जब संसार से चला जाता है जब द्रव्य, स्वामीपन को साथ नही ले जाता, इसलिए मुनिवरों! देखो, जो चित्त में दिए हुए क्रियाकलाप हैं कर्म है। मानो देखो, जो उसको चित्त के मण्डल में स्थिर करके यहाँ से चला जाता है। तो विचार आता है। बेटा! ऋषि कहता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे देवी! इस विद्या का अध्ययन करो और यह विद्या अपने में महानता का गमन कराती है, महानता में तुम्हें ले जाएगी।

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो देवी मौन हो गई। और देवी ने कहा संसार में लोक प्रियता भी मानव के लिए है। वह लोकप्रियता यदि परमात्मा को उसमें स्वीकार कर ले तो मुनिवरों! वह अभिमान से रहित हो करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! जब ऋषि ने इस प्रकार अपनी पत्नी को उपदेश दिया और वह मधु विद्या प्रदान की तो बेटा! वह नतमस्तिष्क हो गई। उन्होंने कहा धन्य हे प्रभु! आप ने मेरे अज्ञान को दूरी किया है। आप को धन्य

है, आप का ज्ञान यह बलवती होता रहे, प्रभु! आप तप करने चले जाईएं। मेरे प्यारे! देखो, मैत्रेयी ने कहा यदि मानव के द्वारा देखो, ज्ञान से उपरामता में, यदि तप नही होता है। तो ज्ञान भी अपंग होता है। जैसे आयुर्वेदाचार्य है और वह आयु के वेद को जानता है। वनस्पतियो को जानता है। यदि उसे आत्म ज्ञान नही है ब्रह्मज्ञान नही है। तो देखो, वह आयुर्वेद भी अपंग बन जाता है। इसी प्रकार जैसे राजा है। यदि राजा मानो देखो, शासन करना जानता है। ब्रह्मज्ञान नही जानता, निरभिमानी नही है। तो मानो देखो, वह राजा भी अपंग कहलाता है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव मानो अपनी मानवीयता में गमन करता है।

मैत्रेयी ने जब ऐसा कहा, ऋषि ने कहा देवी! तुम्हें धन्य है अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मैत्रेयी से कहा देवी! तुम मेरी दो पत्नियाँ हो, एक कात्यानी तुम्हारा बंटवारा किए देता हूँ। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! हम स्वतः अपना बंटवारा कर पायेंगे, आप तप के करने लिए चले जाईएं। मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मनि महाराज ने बेटा! आसन को त्याग दिया, और आसन को त्यागते हुए अमृतां ब्रह्मणे उद्गीत गाते हुए बेटा! भयंकर वन में पंहुचे और भयंकर वन में जा करके उन्हे न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाने लगे और उनमे एक वेदमन्त्र आया मनरतं ब्रह्मणा तपं हिरण्यं रथे। प्रव्हा वेद की आख्यिका यह कहती है कि यह तप क्या है और वेद का मन्त्र पुनः उत्तर देता है। मनस्तप प्रही व्रणा इस मन को पवित्र बनाने का नाम तप कहलाता है।

मन के शोधन के लिए तप



7.मन के शोधन के लिए तप

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा है कि तप करना चाहिए परन्तु तप है क्या? बेटा! वेद का मन्त्र कहता है। हे मानव! तू तपस्वी बन। हे मानव! तू तपमयी जगत को दृष्टिपात कर, परन्तु देखो, यह तप है क्या बेटा! इसके उत्तर में ऋषि कहता है। अन्नादं भूतं ब्रह्मण कृतं ब्रहे लोकां वृत्ति देवा वेद की आख्यिका कहती है क्या मन को पवित्र बनाने का नाम पवित्र तप कहा जाता है। यह मन पवित्र होगा तो बुद्धि मानो जानकारी में विशेषज्ञ होगी और वह मेधावी बनेगी और प्रज्ञावी बनेगी और ऋतम्भरा बन करके बेटा! परमपिता परमात्मा को साक्षात्कार दृष्टिपात किया जा सकेगा। मेरे प्यारे! देखो, यह मन पवित्र बनाने का नाम ऋषि ने बेटा! तप माना है। इसीलिए तप करना चाहिए। परन्तु मन को पवित्र बनाने का नाम बेटा! देखो, तप कहा गया है। तपं ब्रह्मणा तपं हिरण्यं तपम गच्छामि वर्णनं ब्रव्हे वृतम हे मानव! तू तपस्या में परणित हो जा, परन्तु देखो, यह मन जब पवित्र होता है। जब अन्न पवित्र होता है। इसीलिए अन्न को एकत्रित करना चाहिए। तो मुझे बेटा! ऐसा स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने मेरे पुत्रों! देखो, उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया जिस अन्न पर किसी का अधिकार नही था, उसे हमारे यहाँ शिलस्थ अन्न कहा जाता है। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि उस अन्न को एकत्रित करते और उसको जल में मानो देखो, अग्ररीति करके, खरल करके मानो देखो, उसका पान करते थे। मेरे पुत्रों! देखो, बारह वर्ष तक, इस प्रकार का उन्होंने कठोर तप किया और वह मुनिवरों! देखो, लेखनी बद्ध करने लगे। क्योंकि मन पवित्र हो गया, बुद्धि विचारने लगी, मेधावी बन गई। ऋतम्भरावी बन करके बेटा! प्रज्ञा को प्राप्त हो गये। ऋषि ने बेटा! देखो, एक अपने में एक वेदमन्त्र की आख्यिका ले करके उन्होंने एक लेखनियां बद्ध की उन्होंने कहा ब्रह्मणाति ब्रह्मणे लोकाम् क्योंकि ब्रह्म व्रतम ब्राह्मण क्या है? और ब्रह्मचारी कौन है? और ब्रह्म की चरी क्या है। को कौन चरता है।

सात प्रकार का अन्न



8. सात प्रकार का अन्न

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा देवी! इन परमाणुओं की रक्षा करने वाला, मानो अपने में महान कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार का उत्तर दिया, देवी ने कहा प्रभु! धन्य है। मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन! कि जब मानो यह वीरतव और वीरांगनातव नही होता तो यह परमाणुवाद कहा रहता है भगवन! तो मेरे प्यारे! देखो, वह अमृतं शकुंतका के प्रश्न करने पर, ऋषि ने कहा हे देवी! ये परमाणुवाद मानो देखो, यह अन्न में विद्यमान रहता है। देखो, जब सृष्टि के पिता ने सृष्टि का सृजन किया, अथवा इसको उत्पन्न किया तो सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया, यह सात प्रकार का अन्न कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, एक पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक मानव पान करता है, तो एक पशु पान कर रहा है, मेरे प्यारे! देखो, मानव पान कर रहा है, तो ओज और तेज की उत्पति कर रहा है और पशु पान कर रहा है तो दुग्ध आहार करा रहा है। वह पय दे रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह प्रभु कितना महान है, कितना रचयिता है पुत्रों! एक ही पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक को मानव पान कर रहा है। तो एक को पशु पान कर रहा है। मेरी प्यारी माता एक अन्न को भोजनालय में तपा रही है। मेरे पुत्रों! देखो, ओज और तेजोमयी प्राणी बन रहा है। और वही मातां ब्रह्मे और वह परमाणु जब पशु पान करता है, तो गो पान करता है, मेरे प्यारे! वह पय दे रहा है, दुग्धाहार करा रहा है, यह कैसा विचित्र प्रभु का यह विज्ञान है बेटा! मेरे प्यारे! देखो, यह दो प्रकार का अन्न जो मानव को और पशु का कहलाया गया है। और तृतीय जो अन्न है, वह मानो देखो, हूत कहा गया है, आहुति देना यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है, अपनी दिव्या से कहता है कि हे दिव्या! आओ, हम अग्नि को देवताओं का मुख बना करके, मानो उसमें हूत करते चले जाएं, मेरे प्यारे! देखो, वह आहुति दे रहे हैं। हूत कर रहे हैं, देवतव को प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि अग्नि देवताओं का दूत माना गया है। इसीलिए हमारे यहां आहुति देने का नाम भी बेटा! देखो, अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। देवतव अपने में ग्रहण करते रहते हैं, मेरे पुत्रों! देखो, अग्नं ब्रह्मणा व्रतं देवाः हे आहुति देने वाले! जब तू अपने हृदय से आहुति देता है, तो अग्नि उसे ग्रहण कर लेती है, और अग्नि सर्वत्र देवताओं में उसे वितरण कर देती है। और करती हुई मानो देखो, यह पृथ्वी

नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है। उसी अन्नादं भूतं ब्रह्मणा सब देवता, स्वस्थ हो करके बेटा! देखो, अन्नाद को जन्म देते हैं। मेरे प्यारे! देखो, ये पृथ्वी अमृता है, और यह अग्नि मुनिवरों! देखो, तेजोमयी कहलाती है। यह मानो देखो, अग्नि तेजोमयी है, देवताओं का मुख है, इसमें हूत करना बेटा! वह अन्नाद कहते हैं, उसे अन्न कहा जाता है जो देवता जिसे ग्रहण कर रहे हैं। सूर्य की किरणें अपने में ग्रहण कर रही हैं। चन्द्रमा की कान्ति अपने में धारण कर रही हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह हूत हो रहा है, वह अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। एक अन्नाद मेरे प्यारे! देखो, प्रहूत कहा जाता है। जो पुरोहितों को प्रदान किया जाता है, वह पुरोहित कहलाते हैं, जो बेटा! जन समूह में लगे हुए है। जो राष्ट्र और देखो, समाज का कल्याण चाहने वाले हैं। वह भी मानो देखो, उसे प्रहूत कहा जाता है, पुरोहित जन है, बेटा! मुझे वह वाक स्मरण आ रहा है, मेरे प्यारे! देखो, एक समय त्रेता के काल में बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि विश्वामित्र एक स्थली पर विद्यमान हो करके विचार विनिमय कर रहे थे, विचार विनिमय करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे भगवन! हे विश्वामित्र! मेरी इच्छा ऐसी है, क्या तुम अमृतां देवत्वं मानो तुम दण्डक वनों में एक देखो, एक धनुर्याग करो, जिससे मानो देखो, ब्रह्मचारी अपने में अस्त्रों शस्त्रों में युक्त हो जाएं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम।

तो मैं यह विचार विनिमय यह दे रहा था, क्या मुनिवरों! देखो, एक अन्नाद प्रहूत होता है। जो पुरोहित जन होते हैं, राजा के राष्ट्र में बेटा! पुरोहित होने चाहिए, क्योंकि वह भी अन्नाद है, क्योंकि समाज इससे समाज तृप्त होता है। राष्ट्रवाद इससे तृप्त होता है मेरे प्यारे! देखो, उसको प्रहूत कहा जाता है। मुनिवरों! देखो, यह चौथा अन्न कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ये तीन अन्न और होते हैं जो आत्म तत्त्व हो जानने वाले होते हैं, मेरे प्यारे! देखो, मन, प्राण और विचार ये तीन अन्न कहलाते हैं, जिससे बेटा! आत्म का उत्थान होता है। मेरे प्यारे! देखो, मन से विचार मन और प्राण का, दोनों की संज्ञा बन करके तीसरा अन्नाद मानो देखो, विचार की उत्पति होती है। विचार विनिमय करता रहता है, एक स्थली पर बेटा! देखो, मन को प्राण के साथ में विचार और जब वह विचार विनिमय करता रहता है, प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है, मेरे प्यारे! देखो, उससे विचार बनते हैं, और इन विचारों को मन ओर देखो, प्राण और विचार का का तीनों का साकल्य बना करके, उसको बेटा! हृदय रूपी यज्ञशाला में साधक जन, साधना करने वाला बेटा! हूत कर रहा है, वह आहुति दे रहा है, जिससे बेटा! देखो, ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो करके, मानव को बेटा! देखो, विवेक की उत्पति हो करके, परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नही आया हूँ विचार केवल ये

मुनिवरों! यह कि मानव का मन, प्राण और विचार यही मानव को सार्थक बनाता है विचार विनिमय करता हुआ बेटा! परमपिता परमात्मा की महती को महती को जानने लगता है। वही प्राणी बेटा! मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। जो मेरे प्यारे! देखो, मन और प्राण के द्वारा उन्हें अव्रत करा करके, मुनिवरों! देखो, विचारों की तरंगों को, अपने में लाना एकत्रित कर देता है, तो वह जो हृदय इसमें हृदय में सब स्थिति होती है, प्राणी की बेटा! देखो, किसी भी इन्द्रिय से कोई भी, विषय हो, वह इससे बेटा! हृदय में समाहित हो जाता है, वह हृदय अगम्य में परणित होता हुआ, मुनिवरों! देखो, हृदय वृत्ति बन जाता है वह जिज्ञासु बन करके, यथार्थी बन जाता है, मानो वही ज्ञान में प्रवेश हो करके, परमपिता परमात्मा की महती को जानने लगता है।

वेदगान से अभिमन्त्रित जल व अन्न



9. वेदगान से अभिमन्त्रित अन्न व जल का पान

एक समय कौतुक राजा ने अपने राष्ट्र में घोषणा कराई थी कि जितना राष्ट्र में अन्न रूप में द्रव्य है वह मेरे कोष में आ जाना चाहिए। प्रजा ने उस अन्न को राजा के कोष में पंहुचाना प्रारम्भ किया। जब वह राजा के कोष में चला गया। जब मैं बाल्य काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन कर रहा था तो कौतुक राजा के यहाँ मैंने अन्न को ग्रहण किया था। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी किया। तो जब सांयकाल को हमने अन्न को ग्रहण किया और प्रातःकालीन जब हम साधना में परिणत होने लगे, साधना करने लगे तो हमारे मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई, जब मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई तो हमने विचार किया कि अब क्या करें? दोनों ने साधना का काण्ड समाप्त कर दिया। उन्होंने कहा प्रभु! अब क्या करें? तो उन्होंने पुनः स्नान किया, जल में प्रोक्षण करके पुनः जब मार्जन करने के लिए तत्पर हुए तो हम चिन्तन करने लगे, तो आत्म चिन्तन के आश्रित न रह करके ओर ही चिन्तन होने लगा। जब चिन्तन दूषित बन गया, दूषित होने से वह तरंगें उत्पन्न होती रहीं तो उस समय हम दोनों भ्रमण करते हुए, कौतुक राजा के द्वार पर पंहुचे। कौतुक राजा ने ऋषियों का स्वागत किया। उन्होंने कहा प्रभु! स्वागत तो पश्चात होगा। हमारा स्वागत तो इससे पूर्व ही हो गया। जिससे हमारे मन की प्रवृत्ति अशान्त हो गई है। उन्होंने कहा प्रभु! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा तुम्हारे भण्डार में, हमने भोज्य प्राप्त किया था। परन्तु हमारी साधना तो दूषित हो गई, उस समय राजा कौतुक ने निर्णय किया और पाचक से कहा भोजनालय में कैसे अन्न का निर्माण किया था? तो पाचक ने राजा से कहा भगवन! मुझे यह प्रतीत नही है वह कैसा अन्न है? कौतुक राजा ने उससे निर्णय किया। वह अन्न को ले करके आये। उन्होंने कहा कि कहिये तुम यह अन्नाद को कहाँ से लाएं? उन्होंने कहा कि यह जो राष्ट्र का कोष है, उसी में से अन्न को लाया गया हैं।

राजा कौतुक ने निर्णय किया निर्णय करने से प्रतीत हुआ कि जितने भी राजा के राष्ट्र में द्रव्यपति थे उन्होंने द्रव्य का संग्रह सुन्दर प्रवृत्ति से प्राप्त नही कराया। उन्होंने अन्न का जो निर्माण किया ,द्रव्य का हृदय से चिन्तित होना ही हमारा कर्तव्य नही है, प्रजा चिन्तित हो करके अपने में भार स्वीकार

करके वह राष्ट्र कोष में अन्न जाता हैं तो राजा के राष्ट्र को भ्रष्ट कर देता है तो कौतुक राजा ने ऋषि मुनियों के चरणों को स्पर्श किया और चरणों को स्पर्श करके कहा प्रभु! यह मेरा ही दोष है मेरे राष्ट्र में प्रजा का दोष है। भगवन! अब हम क्षमा चाहते हैं।

कौतुक राजा ने जब ऐसा कहा तो ऋषि मुनियों ने कहा, कि हे राजन! यह अन्नाद तुम्हारी इस प्रवृत्ति को भ्रष्ट करेगा और राजा की प्रवृत्ति जब भ्रष्ट हो जाती हैं तो प्रजा का विनाश हो जाता है। ऐसा नही होना चाहिए। उन्होने कहा तो प्रभु! मैं तो इस अन्न को ग्रहण करता ही नही हूँ। मैं तो स्वयं कला कौशल करके ही अन्न को पान करता हूँ। उन्होंने कहा राजन! यह तो यथार्थ है जब हम तुम्हारे अतिथि बन करके आये तो तुमने अपने अन्न में से क्यों नही हमें भोज्य कराया? उन्होंने कहा प्रभु! मुझे यह प्रतीत नही था आपका मेरे से मिलन नही हुआ। तुम राष्ट्र गृह में चले जाते और राजलक्ष्मी तुम्हें अन्न को ग्रहण करा देती। उन्होंने कहा हे राजन! ऐसा हमने नही विचारा, क्यों नही विचारा? क्योंकि इससे पूर्व हम कई समय तुम्हारे अन्न को ग्रहण कर गये थे और उस अन्न को ग्रहण करके हमारी बुद्धि प्रखर बनी रही, एक तरंग नही, दो तरंग नही, नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। तो प्रभु! हमने जाना नही था कि तुम्हारे राष्ट्र में ऐसा भी होता हैं। कौतुक राजा ने कहा भगवन! अब मैं क्षमा चाहता हूँ प्रभु! चलो मेरे राष्ट्र गृह में तुम्हारा प्रवेश हो। तो हम राष्ट्र गृह में पंहुचे। राजा ने गृह में देवी से कहा देवी! ऋषि मुनियों की अन्तरात्मा में अशुद्ध अन्न ग्रहण हो गया है। मन में अशुद्ध धाराओं का जन्म हुआ है और वह जो मन की धाराएँ हैं वह अशुद्धवाद में परिणत हो गई हैं। देवी! स्वयं के उस अन्न को ग्रहण कराओ उन्होंने कहा प्रभु! मैं इस प्रकार अन्न को ग्रहण नही कराऊंगी क्योंकि वह अन्न दमन हो जायेगा वह तरंगें, जो उस अन्न की हैं वह जब दमन हो जायेंगी, तो वह किसी न किसी रूप में पुनः पुनरूक्तियों में आ करके, वह पुनः उभर करके उनकी तरंगों में पुनः दूषित वायुमण्डल को प्रदान करेगा, तो हे भगवन! आज मैं इन ऋषि मुनियों को भोज नही कराऊंगी। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा तो देवी! क्या करें? उन्होंने कहा कि उपवास करो और उपवास करके वेदों का अध्ययन करो। लगभग सूर्य उदय होने से और अस्त होने तक वेद का अध्ययन करो ध्वनि से जिससे वह परमाणुवाद तुम्हारा वेद की ध्वनि के साथ में मिश्रित हो जाये। और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस प्रकार व्यवधान किया जल को अपने समीप ले करके वेद मन्त्रों की तंरगें जल को स्पर्श करके जाती थी कि जल का पान करना और वेद का अध्ययन करना जटा पाठ, घन पाठ में गाना, मध्य में, मन की प्रवृत्ति कुछ चंचल बनी, वह संस्कार पुनः उनके समीप आये तो वेद का अध्ययन करते, रात्रि काल में देवी ने कहा हे प्रभु! आप ऋषि हैं, आप साधक है हम तो संसार के प्राणियों के प्रति साधना करते हैं आप आत्म चिन्तन करते हुए प्रभु, को प्राप्त करने के लिए साधना करते हो।

हे प्रभु! आज पूर्णिमा के चन्द्रमा को निहारते रहो और उसमें प्रभु की सृष्टि को निहारते रहो। पूज्यपाद गुरुदेव ने वही किया परन्तु उसके पश्चात उनके हृदय की वे तरंगें समाप्त हो गई और प्रातः काल जब राष्ट्र गृह में प्रवेश हुआ, तो मन्त्रों की सुगन्ध के साथ, ऋषि मुनियों को अन्नाद का पान कराया, अन्न का निर्माण किया। निर्माण करके उसको तपा करके ऋषि मुनियों को पान कराया।

ब्रह्म ज्ञान



10. ब्रह्म ज्ञान

महाराजा जनक ने कहा प्रभु! मेरा तो एक ही प्रश्न है कि मुझे अश्व पर सवार होने से, पूर्व मुझे ब्रह्मज्ञान हो जाएं। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा अष्टावक्र जी ने क्या, तुम मानो देखो, गुरु दक्षिणा प्रदान करो, उन्होंने कहा, प्रभु! जो आप चाहते हैं वह दक्षिणा स्वीकार कीजिए। उन्होंने कहा, तुम, जो मैं चाहूँगा, वह स्वीकार है। उन्होंने कहा, वह मुझे स्वीकार है। तुम मानो देखो, मुझे तन, मन और धन ये तीनों वस्तुएं मुझे चाहिए। मानो देखो, तुम्हारा तन भी चाहिए, धन और मन का द्रव्य शरीर मुझे चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, राजा जनक ने उसका सङ्कल्प कर दिया, जब सङ्कल्प कर दिया तो राजा जनक ने कहा भगवन! मैं अब अश्व पर सवार होना चाहता हूँ। तो उन्होंने कहा बहुत प्रिय तुम मानो किससे इस पर सवार होना चाहते हो? उन्होंने कहा शरीर से, उन्होंने कहा शरीर मेरा है। मानो देखो, उन्होंने कहा कि मन से, मन से सङ्कल्प करोगे, इसके ऊपर अश्वत होने का, यह मन भी मेरा है, और यह जो द्रव्य, यह जो घोड़ा, अश्व है यह राष्ट्र का द्रव्य है यह द्रव्य भी मेरा है। मानो देखो, राजा जनक ने कहा प्रभु! यथार्थ है। मैं तीनों वस्तुएं आपको सङ्कल्प कर चुका हूँ, परन्तु हमें यह ब्रह्मज्ञान होना चाहिए।

मानो अष्टावक्र ने कहा राजन! यदि अब भी ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ है, ब्रह्म ज्ञान को तुम जानते ही नहीं हो। मानो देखो, यह मन गुरु का बन गया है, और यह द्रव्य भी गुरु का है, और मानो देखो, यह द्रव्य मनं ब्रह्मे यह शरीर भी गुरु का है, जब यह सब तूने मानो मुझे अर्पित कर दिया है, तो यह तो मेरा है इदन्नमम् मानो ब्रह्मे जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में, जब मानो देखो, अग्निहोत्र करता है, जब याग करता है, तो यज्ञमान इदन्नमम् कहता है और वह कहता है यह मेरी वस्तु नहीं है, यह प्रभु आपकी है। तो मानो जब इस तन का जो निर्माण किया है, वह मेरे प्यारे! प्रभु ने किया है। जब माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु और मानो देखो, बिन्दु में भी शिशु विद्यमान है, उस शिशु की रक्षा मानो देखो, जो उसको रचना में लाया है, वह मेरा प्यारा प्रभु है, यह जो शरीर है, यह मेरा है, परन्तु रचनाकार वह प्रभु है, जब वह रचना रच रहा है तो रचना में मानो देखो, वह इस मानव शरीर को

कहीं, आज्ञा चक्र है, कहीं सूचना केन्द्र है, कहीं मानो देखो, चार प्रकार की बुद्धि का निर्माण किया है, कहीं मानो देखो, लघु मस्तिष्क में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन आ रहा है, मानो देखो, वह उसके रचाने वाला कौन है, वह चैतन्य देव है, यह तन को रचाने वाला, तुम्हारे शरीर की जो रचना की है, वह मानो देखो, रचनाकार ही, तो जो रचना रचता है, किसी वस्तु की, वह उसका स्वामी कहलाता है। मानो देखो, वह उसका स्वामी है।

तो प्रभु! ही तो इसका स्वामी है, वह शिशु के आते ही चन्द्रमा, अमृत ले करके आता है, सूर्य प्रकाश ले करके आता है, मानो देखो, अग्नि, उष्ण बनाती रहती है, वायु प्राण देती है, अन्तरिक्ष अवकाश देता है, ये पञ्च महाभूतों की प्रतिभा मानो देखो, इस तन में विशेषकर है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने तो यहाँ तक इस शरीर के सम्बन्ध में कहा है क्या, इसमें मानो चौबीस खम्बें माने गएं हैं, जिससे यह संसार और मानव का शरीर, इस पर रहता है तो यह तन तुम्हारा नहीं है इदन्नमम् यह प्रभु का है। मानो इसमें जो मन कार्य कर रहा है, मन जो प्रत्येक प्रवृत्ति का विभाजन कर रहा है वह मानो देखो, प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु माना गया है जो प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु है वही तो विभाजन करता है, क्योंकि प्रकृति जड़वत है और मन मानो देखो, वह मन भी जड़वत है, केवल प्राण के सन्निधान मात्र से, मानो चेतना के, क्रिया के सन्निधान मात्र से यह मन अपने क्रियाकलापों को प्रारम्भ करता है, कहीं यह स्वप्नवत में चला जाता है, कहीं मानो यह जागरुक में रहता है, कहीं मानो देखो, यह कहीं ऐसे रूप में मानो स्वप्न में, संसार को जागरुकता में भी आ जाता है। जागरुकता में यह दृष्टिपात करता है। मानो यह ब्रह्माण्ड कैसा एक अनूठा बन गया है।

मेरे पुत्रों! आज जब मैं इन विचारों को ले करके अपनी उद्गीतता गाना प्रारम्भ करता हूँ तो बेटा! आश्चर्य में मानो चकित हो जाता हूँ। जैसे मानो देखो, यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके इदन्नमम् कहता है, वह कहता है कि यह मेरा नहीं है तो जब हे राजन्! तू यह स्वीकार कर लेगा, यह तन मेरा नहीं है, प्रभु का, यह निर्माण, जिसने किया, उस निर्माणवेत्ता का है, जब यह स्वीकार करेगा, कि यह जो मन है, यह मेरा नहीं है, मैं मन नहीं हूँ मानो देखो, यह तो प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु है जैसे मानो देखो, माता मानो जैसे परमपिता परमात्मा ने प्रकृति और प्राण मानो देखो, दोनों का ले करके देखो, इस संसार की रचना की है। जैसे मानो देखो, संसार में जब यह प्रश्न किया गया क्या, इस पृथ्वी की नाभि क्या है तो ऋषि ने कहा कि पृथ्वी की नाभि याग है। जो यज्ञमान याग करता है तो वह पृथ्वी की नाभि में याग कर रहा है, वह पृथ्वी की नाभि कहलाता है। जहां मानो देखो, सुगन्धित पदार्थ, पुष्टिकारक पदार्थ और मुनिवरों! देखो, रोगनाशक पदार्थों का जन्म हो करके, भूः, भुवः और स्वः लोकों में मुनिवरों! वह परमाणु छायमान हो जाते हैं।

तो मेरे पुत्रों! देखो, विचार क्या, अष्टावक्र जी ने कहा क्या इसी प्रकार जब इन इदन्नमम् दे करके, यज्ञशाला में मानो देखो, इदन्नमम् यज्ञमान उच्चारण करता है और वह कहता है यह मेरा नहीं है, प्रभु! सब कुछ आपका है, आज जब मैं वनस्पतियों में जाता हूँ जो साकल्य मैंने एकत्रित किए हैं, वह भी साकल्य आपके हैं मानो देखो, वह साकल्य जितने भी औषधियों को एकत्रित किया, उन औषधियों में सुगन्धित पदार्थ हैं, मानो उनमें पुष्टिकारक भी है और वही देखो, रोगनाशक है, उन पदार्थों को मैं अग्नि में इदन्नमम कर रहा हूँ क्या, ये तीनों पदार्थ मेरे नहीं हैं, यह प्रभु आपने ही तो रचना रचे हैं, मानो देखो, प्रभु! मैं तो निमित मात्र हूँ, मैं एकत्रित कर लेता हूँ और उसकी हवि मात्र प्रदान कर देता हूँ। जैसे नाना प्रकार के रूपों को दृष्टिपात करने वाले, ये नेत्र हैं, यह तो रूप को बनाने में, रूप को दृष्टिपात करने लगते हैं और रूपों को दृष्टिपात करके मेरे पुत्रों! देखो, वह रूपो ब्रह्मा वाचा वह केवल आप के ही तो, यह जितना द्रव्य है, यह आपका है क्योंकि आपने प्रकृति को सन्निधान मात्र से गतियाँ प्रदान की है, देखो, उसकी प्रतिभा प्रारम्भ हो गई है।

मेरे पुत्रों! महात्मा अष्टावक्र ने कहा हे राजन! इस प्रकार यह तन प्रभु का निर्माण किया हुआ, प्रकृति का मन है, और मानो देखो, वह जो तुम्हारा कृत कहलाता है मन वचनं ब्रव्हा करणब्ब्रहे कृतप्रव्हा कृतम मेरे प्यारे! देखो, वेद के वांगमय में जाने से प्रतीत होता है, अष्टावक्र जी ने कहा कि यह जो द्रव्य है यह भी राजन! हमारा नहीं है, यह द्रव्य भी मानो प्रभु का है! जब प्रभु ने इस संसार को रचा तो पृथ्वी के गर्भस्थल में मानो सूर्य की ऊर्ज्वा जाती है और वह सूर्य की ऊर्ज्वा से नाना प्रकार के रत्नों का, नाना प्रकार के जलों का, मानो देखो, उनसे संशोधन होता है। जैसे सूर्य की किरणों ने मानो देखो, अग्नि की ऊर्ज्वा ने, मेरे पुत्रों! देखो, सूर्य की किरणों की पुट लगा करके मानो देखो, वज्रों में, रत्नों जैसी धातु का निर्माण है, रत्न जैसी धातु का निर्माण हो रहा है मानो देखो, उसका स्वर्ण के परमाणु आदान प्रदान किए जा रहे हैं। मानो देखो, उसका निर्माणवेत्ता कौन है। मेरे प्यारे! देखो, पञ्चीकरण है पञ्चीकरण में जो चेतना है वह मेरे प्यारे! प्रभु की है। तो इससे यह सिद्ध हुआ, क्या यह द्रव्य भी मेरा नहीं है, तो यह भी इदन्नमम् मानो देखो, यह द्रव्य, हे राजन! तुम्हारा नहीं, यह भी आचार्यों ने वर्णन किया है, कि यह भी प्रभु का है। जब प्रभु की प्रत्येक वस्तु मानो देखो, हमें दृष्टिपात आ रही है, मानो यह जो द्रव्य का जो मूल है, यह पृथ्वी है और पृथ्वी के मूल में मानो देखो, पञ्च महाभूत, अपनी क्रियाएँ कर रहे है। मानो देखो, चन्द्रमा की कान्ति से मानो देखो, रस को प्रदान किया जा रहा है, और सूर्य उसे तपायमान कर रहा है, अग्नि उसे महान तप देकर तेजोमयी बना देती है। मानो देखो, उन्होंने प्राण शक्ति से वायु उनका पिण्ड बना देता है। और मुनिवरों! देखो, वह परमाणु कहाँ से आते हैं, वह अन्तरिक्ष में भ्रमण करते रहते है।

तो मेरे प्यारे! देखो, महात्मा अष्टावक्र ने कहा, क्या यह द्रव्य भी मानो देखो, यह भी प्रभु का है यह भी इदन्नमम् मेरा नहीं है यह द्रव्य तो इसके द्वारा मैं तो केवल देखो, याग कर सकता हूँ और भी नाना प्रकार के क्रियाकलापों में यह शरीर रूपों में जो यज्ञशाला है, मैं इसको पवित्र बना सकता हूँ। मानो देखो, जिन गृहों में द्रव्य का सदुपयोग होता है मानो देखो, दुरूपयोग जहां होता है वहां यही लक्ष्मी मानो देखो, दूरिता बन जाती है और यदि इस लक्ष्मी का, जिसके द्वारा सदुपयोग होता है, याग आदि कर्म होते हैं, सुरा सुन्दरी से मानव दूरी रहता है, तो मेरे पुत्रों! देखो, वह द्रव्य देखो, उसका सहायक बन करके, उसका मित्र बनता है माता बनता है, और वहीं माता लक्ष्मी बन करके श्रीपति बना देती है। मानो देखो, यदि इस द्रव्य का, माता का दुरूपयोग होता है तो एक समय वह आता है कि वह कलह की स्थली बन जाती है, कलह की स्थली बन करके वही माता मानो देखो, दूरिता में परणित करा करके देखो, वही श्री, हे राजन! तेरा मानो पाप मूल बन करके इसका दुरूपयोग मानो तेरे लिए घातक बन जाएगा।

तो मेरे प्यारे! देखो, यह वाक महात्मा अष्टावक्र ने राजा जनक को यह शिक्षा दी और यह कहा कि मानो देखो, यह द्रव्य भी प्रभु का है, यह भी ब्रह्म में लीन होने वाला है। मानो देखो, यह मन भी प्रकृति का है मानो देखो, यह जो कृतो ब्रह्मा वाचो तुम्हारा जो तन है, यह भी मेरा नहीं मानो प्रभु का है और प्रभु की चेतना मात्र से मानो देखो, सन्निधान मात्र से यह शरीर अपने क्रियाकलापों में रत्त हो रहा है यह ब्रह्माण्ड में भी मानो सन्निधान कर रहा है। तो विचार क्या, मानो यही तो ब्रह्म है, इन वाक्यों को जो जानने वाला है, इन वाक्यों की रचना को अंगों और उपांगों से जानता है, वह मानो ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। तो हे राजन! तू ब्रह्मवेत्ता बन जा। मेरे प्यारे! देखो, राजा ने अष्टावक्र जी के चरणों को स्पर्श किया, और उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! आपने मुझे मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता बनाया है, मुझे प्रकाश में पहुँचाया, मैं अन्धकार में था, अन्धकार से प्रकाश में चला गया हूँ।

तो मेरे पुत्रों! देखो, विचार क्या, राजा इस प्रकार का होना चाहिए जो ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्म की जिज्ञासा वाला हो। और आचार्य कैसे? जैसे महात्मा अष्टावक्र मानो देखो, उस आसन पर विद्यमान हो करके, ब्रह्म की चर्चाएं कर रहे हैं, एक गोष्ठी हो रही है। मानो देखो, जब उसकी मीमांसा करते हैं मन की, देखो, मन विभाजन ही तो करता है। प्रत्येक परमाणु का विभाजन करता है, उस विभाजन को जो एक सूत्र बना देता है वह विज्ञानवेत्ता बन जाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह मन ही तो स्वप्रवत को दृष्टिपात करता है, और यही तो चित्त के मण्डलों में मानो जो भी क्रियाकलाप कराता है, चित्त को जानने का यही तो मानो देखो, मनस्तव कहलाया गया है। आज जब हम तनो ब्रह्मा मेरे प्यारे! देखो,

जिसको हम जानने लगते हैं, तो यही तो हमारे जीवन की महान पतिका कहलाती है।

यह वाक बेटा! मैंने तुम्हें कई काल में प्रगट किए हैं आज भी मुझे स्मरण आ रहा है, मैं कोई विशेष चर्चा इस सम्बन्ध में देना नहीं चाहता हूँ, विचार केवल यह है कि महात्मा अष्टावक्र ने विद्यमान हो करके, यह कहा हे राजन! यह जो तुम्हारी ब्रह्मवेत्ताओं की सभा है, इस सभा में मानो देखो, ये बुद्धिजीवी समाज है। जब उन्होंने यह कहा तो मुनिवरों! देखो, उन ब्रह्मवेत्ताओं ने यह कहा क्या आपने अष्टावक्र जी ऐसा क्यों कहा? उन्होंने का मैंने इसलिए कहा है कि क्या जो ब्रह्म की जिज्ञासा वाला हो करके, राग द्वेषों में निहित रहता है वह मानो देखो, कोई ब्रह्मवेत्ता नहीं है देखो, तुम्हारे हृदयों में एक दाह बनी हुई है और यह कि यह मचान पर क्यों विद्यमान हो गया है मैं मचान पर इसलिए विद्यमान हुआ, क्या मैं मानो देखो, जितना मैं जानता हूँ, पूर्ण रूपेण तो प्रभु! कहलाता है, मैं तो कुछ कुछ जानता हूँ उसी के आधार पर इस मचान पर विद्यमान हो गया, मानो देखो, ब्रह्म की कुछ वार्त्ताएं प्रगट करने के लिए, क्योंकि इससे मानव का, दूसरे का, दोनों का हृदय पवित्र हुआ करता है, जो ब्रह्म की जिज्ञासावादी होता है, जिज्ञासु बन करके अपनी चर्चाएं करता है।

इसी प्रकार आज का हमारा यह वाक क्या कहता है पुत्रों! आज का विचार हमारा यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम मानो देखो, इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। तो उन्होंने कहा हे राजन! अब तुम्हें यह ज्ञान हो गया कि मैं मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता बनना चाहता हूँ। मेरे पुत्रों! देखो, ब्रह्मवेत्ता बना करके महात्मा अष्टावक्र यह उच्चारण करके और वहां से अपना गमन करने लगे, अपने ब्रह्मचारी से कहा चलो, मेरे आश्रम को ले चलो। मेरे प्यारे! देखो, महात्मा अष्टावक्र जैसे मचान से निचरले भाग में आए तो ब्रह्मवेत्ताओं ने, उन ऋषि मुनियों ने मानो देखो, उनका स्वागत किया। और यह कहा ऋषिवर! आज आपने हमारे मानो देखो, हमें उत्तर दिया और हमारा ब्रह्मवेत्ताओं का जो समाज एकत्रित हुआ है उसमें जो ब्रह्म की चर्चाएं हुई है, वो मानो देखो, हमें बहुत प्रिय लगी और आज हम मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता बन करके, अब हम इस राष्ट्र को, इस समाज को और मानो देखो, अपने हृदयों को ऊँचा बनाए, देखो, जब प्रजाओं ने मानो यह ब्रह्मवेत्ताओं ने वार्ता प्रगट की, तो मानो देखो, अष्टावक्र ने वहां से गमन किया।

भ्रमण करते हुए मेरे प्यारे! देखो, मार्ग में गमन करते करते महात्मा अष्टावक्र ने कहा, क्या हे ऋषिवर! यह जो तुमने ब्रह्म की मीमांसा की है, मानो क्या यह मीमांसा है ब्रह्म की, उन्होंने कहा नहीं, ब्रह्म की मीमांसा तो अनन्त है। आज मैं जितना जानता हूँ उतना मैंने निर्णय दिया। उन्होंने कहा और क्या जानते हो उस सम्बन्ध में? उन्होंने कहा प्रभु! मैं तो इतना ही जानता हूँ क्या यह मानो देखो,

ब्रह्म एक सूत्र है और यह जगत मानो मनके की भान्ति, इसमें पिराया हुआ है। दोनों का एक चक्र बना हुआ है, इसी को जानने में मानो हम लगे रहते हैं। वहां मुनिवरों! देखो, महात्मा कागभुषुण्ड जी ने अष्टावक्र जी से कहा क्या, तुम्हारा यथार्थ चित्त है, तुम्हारा हृदय बड़ा निर्मल है और स्वच्छ है जो यह कहता है कि मैं इतना जानता हूँ, उनका हृदय बड़ा पवित्र होता है और जो यह कहते हैं मैं यह भी जानता हूँ, मैं अमुक वार्ता को भी जानता हूँ, मानो देखो, वह न जानने के तुल्य कहलाता है। मानो देखो, जो यह कहता है कि मैं कुछ कुछ जानता हूँ जितना जानता हूँ उतना वर्णन करता हूँ। मानो देखो, वह जिज्ञासा वाला है, वह प्राणी प्रभु के निकट जाना चाहता है। मेरे प्यारे! जहां अभिमान की मात्रा मानो, मैं का प्रतिपादन होने लगता है, ब्रह्म जिज्ञासा, उससे दूरी चली जाती है।

वेदगान के द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध बनाओ



श्रृंगी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

11. वेदगान के द्वारा वायुमण्डल को शुद्ध बनाओ

आज हम संसार को सतोयुग में लाना चाहते हैं, राष्ट्रीयता में लाना चाहते हैं, आज हम अपनी सीमा पर शत्रु को दृष्टिपात नहीं करना चाहते, संसार को सुख और शांति में चाहते हैं, भ्रष्टाचार को नष्ट करना चाहते हैं। तो प्रायः प्रत्येक मानव के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिए। प्रत्येक मेरी प्यारी माताओं के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिए। आज जब मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी रहती है तो ब्रह्मचारिणियों का कर्त्तव्य है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म २१ प्राणायाम अवश्य करें। इससे उसके मन की गति चंचल नहीं होगी। जहां मन की गति चंचल हो वहीं प्राणायाम करो। मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो मन की शांति लाने वाला कार्य है उसी को प्राणायाम कहते हैं। मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! गृह आश्रम को पवित्र बनाना चाहते हो तो गृह में सदैव यज्ञ होते रहें, पठन पाठन होता रहे। पति पत्नी और प्यारे पुत्र सभी प्रसन्न हों। वे कार्य नहीं होने चाहिए जो मानवता से दूरी हों। मानव वाले कार्य हों, मनन होना चाहिए, जहां मनन होता है वहां धृष्टता नहीं आती । यहां किसी का भी चिंतन कर लो वही तुम्हारे समीप आने प्रारंभ हो जायेंगे, क्योंकि यह जो अंतरिक्ष है यह तो परमाणुओं का एक समूह है इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु हैं, महान से महान परमाणु हैं, क्लिष्ट से क्लिष्ट परमाणु हैं। देखो यदि एक मानव क्रोध अधिक करता है तो उसे क्रोध ही आने लगता है, क्योंकि क्रोध के परमाणु उसके समीप अधिक आने लगते हैं। वह जो नाग नाम का प्राण है वह उन परमाणुओं को अपने में धारण करता रहता है और परिणाम यह होता है कि मानव क्रोध में भस्म होने लगता है।

मुनिवरो देखो! मन की जो तरंगे हैं वह अंतरिक्ष में रहती हैं जो वाक्य उच्चारण करते हैं वह भी अंतरिक्ष में रहते हैं। परन्तु यह सब उसके विचारों के साथ साथ आते रहते हैं, आते जाते यह कहीं नहीं हैं यह अंतरिक्ष में विराजमान रहते हैं। अंतरिक्ष में हम सब रहते हैं। सभी प्राणी उसी के क्षेत्र में रमण करते रहते हैं।

बेटा! इस परमात्मा के रचाये हुए क्षेत्र में, इस वायुमंडल में आये हैं तो इसको शुद्ध बनाना है। विचारों से शुद्ध बनाओ, मग्न होकर के शुद्ध बनाओ, ब्रह्मचारी रहकर के शुद्ध बनाओ, प्राणायाम करके शुद्ध बनाओ, परन्तु वायुमंडल पवित्र होना चाहिए। जिससे हम प्रभु की सृष्टि को दूषित न करते चले

जायें।

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे हमारी वाणी पवित्र हो जाए, और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे प्यारे! परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है कि जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे इन वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया।



आत्मा-अरे! मन तू ऐसा क्यों है?

मन-स्वामी आपने ही तो आज्ञा दी थी वस्तु उपस्थित करो, मैंने आपकी आज्ञा का पालन करके उपस्थित कर दी।

आत्मा और मन का संवाद

आत्मा अरे मन तू ऐसा क्यों है।

मन स्वामी तूने ही तो आज्ञा दी थी, प्रकृति के गर्भ से लाओ, मैंने उपस्थित कर दी।

आत्माः भाई मन ! तू तो बड़ा ही दुष्ट है, अत्यन्त चंचल है, प्रबल और ढीठ है। कहीं राज्य का लोभ देकर गुलामी करवाता है, कभी ऐश्वर्य का लालच दिखाकर घास कटवाता है, कहीं धन की ध्वनि सुनाकर धनियों के पैर दबवाता है, किसी की ऋषि-सिद्धि में फँसकर पानी भरवाता है। ऐसे ही विषय-भोगों में आसक्त करके न मालूम तू कितने जन्मों से कितनी योनियों में मुझे भटका रहा है। जैसे कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दिखाते हुए चाहे जितनी दूर ले जाया जाय, तुझसे छुटकारा पाने का कोई उपाय दिखलायी नहीं देता। तू हवा से भी तेज दौड़ता है, क्षण भर में ध्रुव मण्डल तक घूम आता है। जाग्रत में ही नहीं, स्वप्न में भी चुप होकर नहीं बैठता। जन्म भर में कभी देखे सुने नहीं, ऐसे-ऐसे अनोखे पदार्थ रच लेता है। भजन करने को बैठता हूँ तो और भी अधिक भागता है। बहुतेरा रोकता हूँ, रुकता नहीं। मन्त्र में लगाता हूँ तो बिना सिर-पैर के मनोराज्य करने लगता है। भगवान का ध्यान करना चाहता हूँ तो भागा-भागा फिरता है। राम-राम जपता हूँ तो ग्राम-ग्राम में घूमता है। घर-बाहर के, दरबार के सब झगड़े भजन में लाकर खड़े कर देता है। तंग आ गया हूँ, तुझ पापी से कब पीछा छूटेगा? जब देखो तब एक-न-एक चिन्ता में ही डाले रखता है। एक घड़ी भी सुख की नींद नहीं सोने देता। मैं संसार से मुक्त होना चाहता हूँ, तू मुझे लौटा-लौटाकर उसी में डालता है। भूत के समान सदा मुझ पर सवार रहता है। सत्संग में जाना चाहता हूँ तो गंजीफ़ा, चौसर, शतरंज में लगा देता है। स्वाध्याय करना चाहता हूँ तो उपन्यास सामने लाकर रख देता है। देवस्तुति वाणी पढ़ने बैठता हूँ तो कहता है घर में दाल नहीं है, घी नहीं है, मिर्च-मसाला निपट गया है, जलाने को लकड़ियाँ नहीं हैं; मंडीका समय है, नाज भी निपटने वाला है, चलो, ले आओ, इस समय पाव भर अधिक मिल जायगा; ईश्वर भजन फिर कर लेना, यह तो रोज का गीत है; पेट-पूजा भी तो प्रधान है, सब उसके पीछे हैं; देवी-देवता भी इसीसे प्रसन्न होते हैं। गीता पढ़ने को दिन भर पड़ा है, रात भी बड़ी- बड़ी होती है; मंडी का समय निकला जाता है। ऐसी- ऐसी तेरी बातों से तंग आ गया हूँ। तेरा सत्यानाश हो जाय।

तूने मेरा सर्वस्व नाश कर दिया है। स्वभाव से मैं सुखी हूँ, तेरे संग में दुःख पाता हूँ। पवित्र होकर भी तेरे संग से पापी कहलाता हूँ। अचल भी तेरे संग से चल बन गया हूँ। बृहत् होकर भी तेरे संग से अणु हो गया हूँ। असंग होने पर भी तेरे संग से कर्ता-भोक्ता की उपाधि मेरे सिर मढ़ी गयी है। स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र और मुक्त होकर भी तेरे संग से बन्धनमें पड़ा हूँ। तृप्त होकर भी भूखा बना रहता हूँ। निर्भय होकर भी भयभीत हूँ। नहीं जन्मता हुआ भी जन्मता हूँ, अमर होकर भी मर रहा हूँ। कहाँ तक रोऊँ? तेरे संग से तंग हूँ।

मन आत्मा सेः अच्छा! मैं तुझसे ही इन्साफ कराता हूँ, तुझे ही न्यायाधीश बनाता हूँ बोल, जो कुछ मैं कहता हूँ, ठीक है या नहीं?

मन वाह! साहब, वाह! अच्छी उलटी गंगा बहायी।

करना आप, लगाना नौकर को।

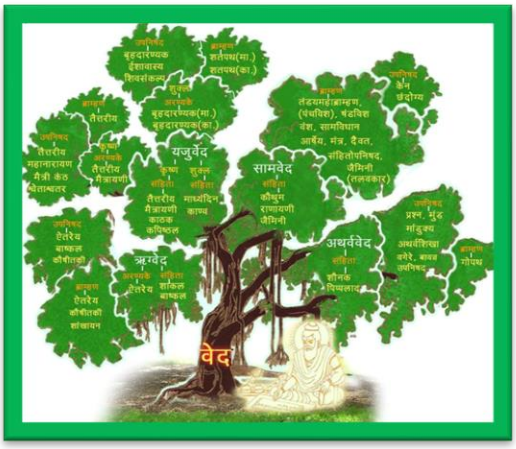
ऐसी समझ है, तभी तो आप तंग हो रहे हैं। आपने जितनी बातें कही हैं, सब झूठी हैं। निर्मूल हैं। दूसरे को दोष लगाना बड़ा भारी पाप है। सोच-विचार कर बोलना चाहिये! आप अच्छे, मैं बुरा! बुरेने अच्छेको बिगाड़ दिया, कहीं ऐसा भी हो सकता है? क्या गुरु जी से यही पढ़ा है? रोज तो सुना करते हैं कि बुरा बुरा ही रहेगा, अच्छा अच्छा ही रहेगा। बुरा अच्छा नहीं हो सकता, अच्छा बुरा नहीं हो सकता। जैसे दिन-रात का मेल नहीं होता, ऐसे ही अच्छे-बुरे भी मिल नहीं सकते। सोना खोटा नहीं हो सकता। जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य भी होता है। सजातीयका सजातीयसे ही मेल हो सकता है, विजातीयका नहीं हो सकता। फिर मैंने आपको सुखीसे दुःखी कैसे बना दिया? आप मुझे दुष्ट, चंचल, बलवान् और ढीठ बताते हैं; मैं इनमें से एक भी नहीं हूँ। यदि हूँ तो आपका बनाया हुआ ही हूँ। मैं तो सरल, अबल, लँगड़ा और बेपेंदी का लौटा हूँ। बिना कौड़ी-पैसे का नौकर हूँ, बिना दाम का खरीदा हुआ गुलाम हूँ। वचन में बँधा हुआ हूँ, इशारे पर काम करता हूँ। जो वस्तु आप माँगते हैं, वही लगाकर देता हूँ। जहाँ खड़े होने को कहते हैं, वहीं एक टाँग से खड़ा रहता हूँ! आपकी रुचि के अनुसार काम करता हूँ, आपकी रुचि बिना कोई काम नहीं करता। जब आप कहते हैं, तभी चलता हूँ! आपके दिये हुए पैरोंसे चलता हूँ! नहीं तो मेरे पैर हैं ही नहीं। लँगड़ा हूँ, जड हूँ, बल भी मुझमें नहीं है, यदि है तो आपका दिया हुआ है - मैं तो बलहीन हूँ। अबला के पुत्र में बल आवे ही कहाँ से? आपकी बुद्धि विपरीत हो रही है, इसलिये आपको कुछ-का- कुछ दिखायी दे रहा है। ढिठाई कैसे कर सकता हूँ? ढिठाई तो वह करे जिसमें बल हो, बल पेंदी में होता है, - मैं बिना पेंदीका हूँ। फिर ढीठता करूँ ही कैसे? पक्षपात न कीजिये, पक्षपात रहित होकर विचारिये। आप स्वभाव से भले ही निर्दोष हों, मैं आपको दोषी नहीं बताता, आप निर्दोष सही परन्तु दोषी मैं भी

नहीं हूँ। यदि हूँ तो आप पहले होंगे। कारण से कार्य भिन्न नहीं होता। जैसे आप हैं, वैसा ही मैं भी हूँ। आपमें से ही तो निकला हूँ। फिर दोषी कहाँ? कहीं आसमान में से तो टपक नहीं पड़ा। आपका बनाया हुआ हूँ। आपने ही मुझसे संग किया है। जो-जो भोग आप माँगते हैं, मैं लाकर मौजूद कर देता हूँ! जो-जो योनि आपको पसंद होती है, वहीं मैं आपको ले जाता हूँ। आप कहते हैं कि भजन नहीं करने देता। भजन करना आप चाहते ही कब हैं? धनमें, स्त्रीमें, पुत्रमें, ऐश्वर्यमें, नाममें, कीर्तिमें, ऋद्धि- सिद्धिमें, जुएमें, चोरीमें व्यभिचारमें, मांसमें, मदिरामें, बीड़ीमें, चुरुटमें, अफ़ीममें, भंगमें, चरसमें, गाँजेमें, मीठेमें, नमकीनमें, चटपटेमें आपकी रुचि है; इनसे आपको फुरसत ही कहाँ है? दिन-रातमें इन्हींका तो भजन किया करते हैं, फिर ईश्वरका भजन कहाँ से हो? जो खायगा, उसी की डकार आवेगी। फोनोग्राफ में जो राग भरा जायगा, वही निकलेगा। कुँजड़े के यहाँ तो साग-पात ही मिलेगा, जवाहरात तो जौहरी की दूकान पर ही मिलेंगे। जैसी आपकी रुचि होती है, वैसा ही मैं भी बन जाता हूँ। नौकर को क्या उज्र? 'जी हाँ' करना नौकर का काम है। चौबेजीका नौकर हूँ, बैंगनों का नौकर तो हूँ नहीं; चौबेजी बैंगनोंको अच्छा बताते हैं तो मैं उन्हें गुणवाला बना देता हूँ। चौबेजीको बैंगन नापसंद हों तो मैं उन्हें बेगुन कह देता हूँ। 'पाँड़ेजी, तुम्हें ग्राम में रहना; ऊँट बिलैया ले गयी तो हाँ जी हाँ जी कहना!' सुनिये, आपकी राजी में मेरी राजी है। आप स्वाध्याय कीजिये, प्रणिधान कीजिये, आसन लगाइये, प्राणायाम कीजिये। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि कीजिये। राम नाम का जाप कीजिये; नवधा, प्रेमा, पराभक्ति कीजिये, श्रवण, मन न, निदिध्यासन कीजिये। शंकर की, कृष्ण की, राम की जीवन शैली का ध्यान कीजिये। जो कुछ आप चाहें, प्रेम से कीजिये। आप स्वतन्त्र हैं। मैं आपको रोकनेवाला कौन हूँ? मैं तो कान पकड़ी छेरी हूँ; जिधर लगा देंगे, उधर लग जाऊँगा। जब आप संसार से मुक्त होना चाहें, मुझे घर बैठने की आज्ञा दे देना! नौकर की जड़ जमीन से साढ़े तीन हाथ ऊँची होती है; जहाँ आपने जीभ हिलायी, अलग जा बैठूंगा। परमात्मा करे, आप मुक्त हो जायँ; बड़ी खुशी की बात है। आप मुक्त हो जायँगे तो मैं भी मुक्त हो जाऊँगा। आपके आश्रय ही तो मैं हूँ, आपके साथ मेरी भी मुक्ति हो जायगी। सच पूछो तो मुक्ति तो मेरी ही होगी, आप तो स्वभावसे मुक्त हैं ही।

आत्मा-(एकान्त में जाकर) भाई कहता तो ठीक ही है। जैसे पुरुष की छाया होती है, वैसा ही जीवका मन है। जैसा पुरुष होता है, वैसी ही उसकी छाया होती; जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा मन है। मन तो सचमुच जैसा कहता है, वैसा ही है। मैंने उसे सत्ता दे रखी है, नहीं तो उस बेचारे की सत्ता ही कहाँ है? वह तो सचमुच नौकर ही है; नौकर नहीं, किन्तु औजार है। औजार में अपनी सत्ता तो कुछ होती नहीं, औजार वाला अपनी मर्जी के अनुसार उसको उपयोग में ला सकता है। यही बात मन के

सम्बन्धमें है! प्रायः सब कार्य मेरे इच्छानुसार ही करता है, किसी कार्य को यदि मैं ही न कराऊँ तो बात दूसरी है। इससे सिद्ध होता है कि मन मेरा औजार है, जड़ है और मैं स्वतन्त्र कर्ता, चेतन हूँ। मैं मन के अधीन नहीं हूँ, मन मेरे अधीन है।

पाठक! इतना जानने से साधक सुखी हुआ, आयु-पर्यन्त मन से इच्छानुसार कार्य लेता रहा और अन्त में उसको छोड़कर स्वस्वरूपमें स्थित होकर हमेशा के लिये जन्म- मरणरूप संसार से मुक्त होकर वैष्णव-पद को प्राप्त हुआ। अज्ञान से सब दुःख है; मन को मन समझते ही मन न मन करने लगता है, स्वाधीन हो जाता है। मन का स्वरूप न समझने से मन चालीस सेरका हो गया है, जानने पर छटाँक का भी नहीं निकलता। न तोला, न माशा, न रत्ती; फूँकमात्रसे उड़ जाय, इतना हलका हो जाता है! सच पूछो तो फूँकका भी काम नहीं है। न हुआ ही हौआ है! बिना सिर-पैर का भूत है! जहाँ पहचान लिया, भूः स्वाहा हो जाता है, स्वयम्भू ही शेष रह जाता है। यह गुरुमन्त्र है, इसको मत भूलो!।



ओ३म् युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत्॥ यजुर्वेद ११.१

सविता देवता, छन्दः विराडार्ष्यनुष्टुप्, स्वरः गान्धारः, ऋषिः प्रजापतिर्ऋषिः।

पदार्थः जो (सविता) ऐश्वर्य को चाहने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) उन परमेश्वर आदि पदार्थों के ज्ञान होने के लिये (प्रथमम्) पहिले (मनः) विचारस्वरूप अन्तःकरण की वृत्तियों को और (धियः) धारणा रूप अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भू गर्भ विद्या में युक्त करता हुआ (अग्नेः) पृथिवी आदि में रहने वाली बिजुली के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चय करके (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर (आभरत्) अच्छे प्रकार धारण करे, वह योगी और भूगर्भ-विद्या का जानने वाला होवे॥

ओ३म् युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥ यजुर्वेद ११.२

सविता देवता, छन्दः शङ्कुमती गायत्री, स्वरः षड्जः, ऋषिः प्रजापतिर्ऋषिः।

पदार्थः हे योग और तत्त्वविद्या को जानने की इच्छा करने हारे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास किये (मन सा) विज्ञान और (शक्त्या) सामर्थ्य से (देवस्य) सब को चिताने तथा (सवितुः) समग्र संसार को उत्पन्न करने हारे ईश्वर के (सवे) जगत् रूप इस ऐश्वर्य में (स्वर्ग्याय) सुख प्राप्ति के लिये प्रकाश को अधिकाई से धारण करें, वैसे तुम लोग भी प्रकाश को धारण करो॥

ओ३म् असुर्य्या नाम लोकाऽअन्धेन तमसावृताः।ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजुर्वेद ४०.३

पदार्थः जो (लोकाः) देखने वाले लोग (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) ज्ञान का आवरण करने हारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढंपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्य्याः) अपने प्राण पोषण में तत्पर अविद्यादि दोष युक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पाप कर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध में होते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं॥

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषाञ्ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ यजुर्वेद ३४.१

मनो देवता, विराट् त्रिष्टुप्, धैवतः।

पदार्थः हे जगदीश्वर वा राजन्! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशन श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत्त करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर-दूर (उत्, ऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला (अस्तु) हो॥

ओ३म् पुरोऽपेहि मन स्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ अथर्ववेद ६.४५.१

पदार्थः (मन स्पाप) हे मानसिक पाप! (परः) दूर (अप इहि) हट जा (किम्) क्या (अशस्तानि) बुरी बातें (शंससि) तू बताता है। (परा इहि) दूर चला जा, (त्वा) तुझको (न कामये) मैं नहीं चाहता, (वृक्षान्) वृक्षों और (वनानि) वनों में (सम् चर) फिरता रह, (गृहेषु) घरों में और (गोषु) गौ आदि पशुओं में (मे) मेरा (मनः) मन है॥

ओ३म् आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः। तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ ऋग्वेद ७.४७.१

लिङ्गोक्ताः, निचृज्जगती, निषादः।

पदार्थः (आपो) उत्तम जल (यम्) जिस को (प्रथमं) पहले (देवयन्त) उत्तम कामना करनेवाले जन (इन्द्रपानम्) पान द्वारा इंद्र के देवत्व गुणों को धारण करने योग्य मनुष्य जन उस को (ऊर्मिम्) तरंग के समन उस उत्तम जल को (इळः) वाणी द्वारा (अकृण्वत) सिद्ध करें अभिमंत्रित करें. उस (शुचिम्) पवित्र (अरिप्रम्) निष्पाप निर्दोष (घृतप्रुषम् मधुमान्तम्) दुग्ध मधु आदि से पूरित (अद्य) आज (वनेम) विशेष रूप से सेवन करें।

इदन्नमम्-यह तेरा कुछ भी नही है। यह सब प्रभु का है।

आत्मा और मन की पवित्रता के लिए तप P1_890803



मन के शोधन के लिए तप-१

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

महर्षि याज्ञवल्क्य ने विचारा मैं वन में तो आ गया हूँ, मुझे तपस्या करनी है। महानता में परणित होना है और मुझे कैसे तपस्वी बनना है। विचार के लिए संसार में मन की आवश्यकता है। मन को पवित्र बनाने के लिए मन का शोधन किया। शोधन क्या होता है? मन को शोधन करने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। उन्होंने विचारा कि मुझे कौन से अन्न को पान करना है। ऋषि ने विचार जिस भूमि में से कृषक अपने गृह को अन्न ले जाते हैं और वह अन्न जो भूमि में पड़ा हुआ बच जाता है उस अन्न को मुझे चुनना है, उसी का आहार करना है, उसी से मेरा मन वास्तव में सुन्दर बन जाएगा। ऋषि ने सङ्कल्प धारण कर लिया और उस अन्न को चुनना आरम्भ कर दिया जिसको सिला अन्न कहते हैं उसी का पान करने से उनका मन अच्छी प्रकार शोधन हो गया। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसी प्रकार बारह वर्ष की तपस्या की। उस अन्न को पान किया, इन्द्रियों को संयम में किया। बारह वर्ष के पश्चात उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया जिस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है।

आत्मा और मन की पवित्रता के लिए तप P1



मन के शोधन के लिए तप-२

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

वेद का आचार्य कहता है। हे ब्रह्मचारियों! वेद का मन्त्र कहता है कि मानव को तपना चाहिए और तपने के पश्चात ही मानो देखो, वह अभ्योदय हो जाता है। जैसे यह संसार का प्रत्येक परमाणु तप रहा है और तपने के पश्चात ही मानो देखो, उसमें नाना प्रकार की वृत्तियो का जन्म हो जाता है और वही मुनिवरों! वही मुनिवरों! देखो, तपोमय कहलाता है। राजा के राष्ट्रर में तपा हुआ, जब राजा होता है। तो मुनिवरों! देखो, प्रजा तपों में बन जाती है। यदि राजा तपता नहीं है ब्रह्मज्ञानी नही है। तो मानो देखो, उस राजा की प्रजा बिखर जाती है और वह मुनिवरों! देखो, राष्ट्ररीयतव में आने में अधूरापन अपने में वह स्वीकार करने लगता है। इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है। तपं हिरण्यं राजन्मं ब्रह्मे तपाः वेद का मन्त्र कहता है। हे राजन! तू तपस्वी बन और तप मानो देखो, तपों में जब जीवन बन जाता है। तो मुनिवरों! देखो, राष्ट्रर पवित्र बन जाता है। महान बन जाता है। विद्यालयों में जब आचार्य तपें हुए होते है। तो ब्रह्मचारी मानो देखो, तपोमय बन जाता है। विद्यालय के पवित्र होते ही, राष्ट्रर और समाज पवित्र बन जाते है और मुनिवरों! देखो, इसीलिए वेदमन्त्र कहता है। तपं तपा ममं ब्रह्मणे मात्राणि गच्छतं तपा वेद का ऋषि कहता है कि माता को अपने गृह आश्रम में तपना चाहिए क्योंकि पितर को तपना चाहिए यदि वह तपते है। तो ब्रह्मचारी उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाने का प्रयास करते है।

तो आओ मेरे पुत्रों! देखो, वेदमन्त्र कहता है। तपं तपां हिरण्यं तपं ब्रह्मणा कृतं मेरे प्यारे! देखो, मानो यहाँ संसार का प्रत्येक प्राणी मात्र तप रहा है। लोक लोकान्तर तप रहे है। बेटा! सूर्य प्रातः काल में उदय होता है और वह प्रकाश में तप रहा है और तपने के पश्चात मुनिवरों! देखो, तपो में बन करके, वह तपो में ही संसार की तपाता रहता है। नाना प्रकार की ऊर्ज्वा देता है। चन्द्रमा अमृत देता है। वह मानो देखो, तपायमान करता रहता है। इसीलिए हमें प्रत्येक मानव को तपों में ही रमण करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को तप की महिमा का वर्णन कर रहे थे जब न्यौदा मं उनका उपदेश सम्पन्न हुआ तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि ब्रह्मचारियों मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं तप करने जा रहा हूँ। क्योंकि प्रत्येक मानव को तपना चाहिए। मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियों ने आचार्य जनों ने एक स्वर में हो करके कहा प्रभु! आप तपने के लिए जाईएं भगवन! क्योंकि विद्यालय में जब आचार्यजन तपे हुए होते है। तो मानो देखो, वह विद्यालय पवित्र होता है और ब्रह्मचारी भी उसकी शिक्षा का अध्ययन करते हुए, अपने में तपो में बन जाते है। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा तो महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा धन्य है, हे ब्रह्मचारियों! अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मेरे पुत्रों! आज्ञा पा करके, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बेटा! देखो, भयंकर वनो में पंहुचे और भयंकर वन में एक स्थली पर विराजमान हो करके न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करने लगे और न्यौदा में मन्त्रों का अध्ययन करके उन्होंने कहा तपं ब्रह्मणे तपं रुद्राणि गच्छत तपा मनश्चं ब्रव्हा।



तप के लिए मधु विद्या

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

मेरे प्यारे! देखो, वेद का ऋषि जब एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके, जब वेद का अध्ययन करने लगा, मनो हृदय में मन का अध्ययन करने लगा तो बेटा! देखो, विचार आया कि वेदमन्त्र कहता है कि मनं ब्रव्हे। मानो देखो, मन से सम्बन्धी जितने प्राणी होते है उनको सन्तुष्ट करना चाहिए ब्रह्मवेत्ता को, और जब तक वह सन्तुष्ट नही हो जाते मानो उनके मन का जो तारतम्य है। मन से समन्वय रहता है। हो सकता है कि मन चञ्चल हो जाए, मानो परमात्मा के ध्यानावस्थित न हो, तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने विचारा, मेरी दो पत्नियाँ है। एक का नाम कात्यानी है एक का नाम मैत्रेय है। मुझे दोनों को सन्तुष्ट करना है। जब मुझे तपो में मानो जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने आसन को त्याग दिया, और भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, उन्होंने अपने गृह में उन्होंने प्रवेश किया। और मुनिवरों! सबसे प्रथम वह कात्यानी के आसन पर पंहुचे, और कात्यानी ने बेटा! देखो, उनके चरणों की वन्दना की और एक आसन दिया, आईए भगवन! विराजिए वह विराजमान हो गएं कात्यानी ने कहा प्रभु! देखो, आज बिना सूचना के तुम्हारे आने का कारण क्या है? तुम्हारी प्रथम सूचना आ जाती थी, आज कोई सूचना नही आई, इसका मूल कारण क्या है? याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे देवी! मैं प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों के मध्य में, वेदाध्ययन कर रहा था और उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था तो इसीलिए वेद का मन्त्र कहता था तपं हिरण्यं तपं दिव्यां गतं ब्रह्मणे तपः वेद का मन्त्र कहता है कि तपना चाहिए। तो हे देवी! मैं तप करने के लिए मैंने विद्यालय को त्याग दिया है और मैं तप करने जा रहा हूँ। तो वेद मन्त्रों का उच्चारण मेरे स्मरण आया ब्रह्मणे ऋममना वर्णा व्रत्यं मना गच्छं मनं ब्रहे व्रता शुद्धं दधि वृद्धा ऋममना वेद का वाक कहता है। देवी कि जो मन के सम्बन्धित जो प्राणी होते है। उनको सन्तुष्ट करना है। तुम मेरे मन से सन्म्बन्धित हो, इसीलिए मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिए आया हूँ। और मुझे आज्ञा दो कि मैं तप करने चला जाऊँ, मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब ऐसा कहा तो देवी ने कहा कहा प्रभु! यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो मानो देखो, हमारा देवतव तपस्वी बन जाए तो प्रभु! यह तो हमारा सौभाग्य है, आप तप करने के लिए जाईएं। मेरे प्यारे! जब कात्यानी ने यह कहा कि आप तपं हिरण्यं तपश्चं ब्रव्हा आप तप करने के लिए जाईएं भगवन! और हम यहाँ तप करेंगे। मानो आप तप करने के लिए वनो में गमन करो, मेरे प्यारे! देखो, कात्यानी के मानो यह हृदय ग्राही शब्दों को ग्रहण करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और ऋषि ने कहा धन्य है। हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अब मैत्रेयी के समीप पंहुचे और मैत्रेयी ने भी उसी प्रकार उसको आसन दिया और वह आसन पर विद्यमान हो गएं उन्होंने कहा कहो भगवन! आज बिना सूचना के तुम्हारा कारण क्या है? उन्होंने कहा है। मैत्रेयी मैं आज न्यौदा में वेद मन्त्रों का अध्ययन कर रहा था। प्रातःकालीन परन्तु उसमें तप की बड़ी महिमा का वर्णन आ रहा था क्या राजा भी तपा हुआ हो तो राष्ट्रर ऊँचा बन सकता है और हम सब जब तक तप में नही जाएंगे अपने जीवन को महान नही बना सकेंगे। तो हे देवी! मैं तप करने जा रहा हूँ मेरे पुत्रों! देखो, मैत्रेयी ने कहा प्रभु! आपको यह प्रतीत है। क्या पत्नी जो होती है वह पति मानो देखो, पत्नी के लिए वह अमृता ब्रहे। वह उसी में मानो संलग्न रहती है। हे प्रभु! यदि आप तप करने जा रहे हो तो मेरा क्या बनेगा? महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी!

तुम्हें प्रतीत है कि जब मेरा तुम्हारा किसी काल में शास्त्रार्थ हुआ था तो मानो आत्म ज्ञान के ऊपर शास्त्रार्थ हुआ मानो देखो, तुम्हारी आत्मा का जो प्रसंग था वह बड़ा विचित्र था। आज तुम्हारा वह ज्ञान कहाँ चला गया है। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! वह ज्ञान तो मेरे समीप है। परन्तु एको बहुधा की जो कामना है, वह बड़ी विचित्र रहती है। भगवन! हे प्रभु! यदि इसीलिए आप यदि गमन कर जाएंगे तो हम अपने जीवन को अधूरेपन में स्वीकार करेंगे। याज्ञवल्क्य मुनि बोले नही देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि मधु विद्या क्या कहती है। मधु विद्या यही कहती है कि पति जो होता है वह पत्नी तक सीमित रहता है और यदि वह अपने लिए स्वतः पति बन जाएं अपनी आत्म मानो देखो, अपनी इन्द्रियों पर संयमी बन जाए तो उस मानव का कल्याण हो जाए। क्योंकि वह अधिपथ्य करने वाले को पतिवत कहते है। मेरे प्यारे! देखो, जो अपने में संयमी कहलाता है। यदि वह अपने में पति बन जाए मानो अपना ब्रह्मणे कृतं देवा अपने को पति, अधिपथ्य स्वीकार करे। तो बेटा! ऋषि कहता है कि वह अपने में महानता को प्राप्त हो जाए मेरे प्यारे! उन्होंने कहा देवी! पत्नी जो होती है वह पत्नी तक सीमित होती है और यदि वह पत्नी अपने को यह स्वीकार कर ले कि मैं पत्नी हूँ। मेरा अधिपथ्य है इन्द्रियों पर मेरा संयम है। मैं अपनी इन्द्रियों की पत्नी हूँ। तो मानो उसका कल्याण हो जाए, वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाए हे देवी! मानो देखो, वह अपने लिए भी स्वयं पत्नी बन जाए तो कल्याण का मार्ग उसे प्राप्त हो जाएगा मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा देवी! पुत्री जो होती है। वह पिता तक पुत्री होती है। यदि वह अपने लिए पुत्री बन जाए कि मैं परमपिता परमात्मा की पुत्री हूँ। मानो देखो, जल, अग्नि वायु सब सर्वत्र व परमपिता परमात्मा सन्निधान मात्र से मेरे जीवन को क्रिया दे रहा है। मानो देखो, उसकी आभा में मैं रत्त हो रही हूँ। तो इसीलिए मानो यदि वह अपने लिए मानो पुत्री बन जाए और यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा के राष्ट्रर में हूँ। और उसी की मैं पुत्री हूँ तो मानो देखो, मैं पुत्री बन करके यू ही महानता में परणित हो करके परमात्मा को प्राप्त हो जाऊँ महानता में परणित हो जाए मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा हे देवी! पुत्र जो होता है, वह माता तक सीमित होता है यदि पुत्र स्वयं देखो, अपने लिए पुत्र बन जाए तो मानो देखो, उसका कल्याण हो जाए और वह यह स्वीकार कर ले कि मैं परमपिता परमात्मा का पुत्र हूँ, परमात्मा के ही आंगन में ही मैं विद्यमान हूँ। परमात्मा ही मानो देखो, जैसे पुत्रवत को सर्वत्र सुविधा देता है। ऐसे ही परमपिता परमात्मा मुझे प्रदान कर रहे है। तो मानो देखो, मैं स्वतः अपने लिए वह पुत्र बन करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त को प्राप्त हो जाऐ हे देवी! संसार में जो भी मानो देखो, वित्तैषणा है। नाना प्रकार की वित्तैषणा में लगा हुआ है। लोकैषणा में लगा हुआ है। मानो यदि वह लोकप्रियता के विचार में रत्त हो जाता है। लोकप्रिय बन जाता है। तो वह मानो देखो, वे परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता में सदैव अपने को ले जाता है और यदि वह मानं ब्रह्मणे कृतं देखो, वित्त अपने आत्म तत्त्व के लिए तृप्त होने के लिए, क्या मैं इससे तृप्त हो जाऊँगा। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है कि यदि वित्त परमपिता को वो स्वीकार कर लें कि यह परमपिता परमात्मा की सम्पदा है। इसका अधिपथ्य मानो देखा प्रभुतव है। तो मुनिवरों! देखो, उस मानव का कल्याण हो जाए वास्तव में देखो, जब संसार में आता है प्राणी जब मुनिवरों! देखो, वह अपने में कोई, द्रव्य स्वामी नही बन करके आता और जब संसार से चला जाता है जब द्रव्य, स्वामीपन को साथ नही ले जाता, इसलिए मुनिवरों! देखो, जो चित्त में दिए हुए क्रियाकलाप हैं कर्म है। मानो देखो, जो उसको चित्त के मण्डल में स्थिर करके यहाँ से चला जाता है। तो विचार आता है। बेटा! ऋषि कहता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे देवी! इस विद्या का अध्ययन करो और यह विद्या अपने में महानता का गमन कराती है, महानता में तुम्हें ले जाएगी।

आत्मा और मन की पवित्रता के लिए तप के लिए मधु विद्या P3

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो देवी मौन हो गई। और देवी ने कहा संसार में लोक प्रियता भी मानव के लिए है। वह लोकप्रियता यदि परमात्मा को उसमें स्वीकार कर ले तो मुनिवरों! वह अभिमान से रहित हो करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! जब ऋषि ने इस प्रकार अपनी पत्नी को उपदेश दिया और वह मधु विद्या प्रदान की तो बेटा! वह नतमस्तिष्क हो गई। उन्होंने कहा धन्य हे प्रभु! आप ने मेरे अज्ञान को दूरी किया है। आप को धन्य है, आप का ज्ञान यह बलवती होता रहे, प्रभु! आप तप करने चले जाईएं। मेरे प्यारे! देखो, मैत्रेयी ने कहा यदि मानव के द्वारा देखो, ज्ञान से उपरामता में, यदि तप नही होता है। तो ज्ञान भी अपंग होता है। जैसे आयुर्वेदाचार्य है और वह आयु के वेद को जानता है। वनस्पतियो को जानता है। यदि उसे आत्म ज्ञान नही है ब्रह्मज्ञान नही है। तो देखो, वह आयुर्वेद भी अपंग बन जाता है। इसी प्रकार जैसे राजा है। यदि राजा मानो देखो, शासन करना जानता है। ब्रह्मज्ञान नही जानता, निरभिमानी नही है। तो मानो देखो, वह राजा भी अपंग कहलाता है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव मानो अपनी मानवीयता में गमन करता है।

मैत्रेयी ने जब ऐसा कहा, ऋषि ने कहा देवी! तुम्हें धन्य है अब मैं तप करने के लिए जा रहा हूँ। मैत्रेयी से कहा देवी! तुम मेरी दो पत्नियाँ हो, एक कात्यानी तुम्हारा बंटवारा किए देता हूँ। मैत्रेयी ने कहा प्रभु! हम स्वतः अपना बंटवारा कर पायेंगे, आप तप के करने लिए चले जाईएं। मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है। महर्षि याज्ञवल्क्य मनि महाराज ने बेटा! आसन को त्याग दिया, और आसन को त्यागते हुए अमृतां ब्रह्मणे उद्गीत गाते हुए बेटा! भयंकर वन में पंहुचे और भयंकर वन में जा करके उन्हे न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाने लगे और उनमे एक वेदमन्त्र आया मनरतं ब्रह्मणा तपं हिरण्यं रथे। प्रव्हा वेद की आख्यिका यह कहती है कि यह तप क्या है और वेद का मन्त्र पुनः उत्तर देता है। मनस्तप प्रही व्रणा इस मन को पवित्र बनाने का नाम तप कहलाता है।

आत्मा और मन की पवित्रता के लिए सात प्रकार का अन्न P1



सात प्रकार का अन्न

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा देवी! इन परमाणुओं की रक्षा करने वाला, मानो अपने में महान कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार का उत्तर दिया, देवी ने कहा प्रभु! धन्य है। मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन! कि जब मानो यह वीरतव और वीरांगनातव नही होता तो यह परमाणुवाद कहा रहता है भगवन! तो मेरे प्यारे! देखो, वह अमृतं शकुंतका के प्रश्न करने पर, ऋषि ने कहा हे देवी! ये परमाणुवाद मानो देखो, यह अन्न में विद्यमान रहता है। देखो, जब सृष्टि के पिता ने सृष्टि का सृजन किया, अथवा इसको उत्पन्न किया तो सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया, यह सात प्रकार का अन्न कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, एक पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक मानव पान करता है, तो एक पशु पान कर रहा है, मेरे प्यारे! देखो, मानव पान कर रहा है, तो ओज और तेज की उत्पति कर रहा है और पशु पान कर रहा है तो दुग्ध आहार करा रहा है। वह पय दे रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह प्रभु कितना महान है, कितना रचयिता है पुत्रों! एक ही पौधा है उस पर दो प्रकार का अन्न है, एक को मानव पान कर रहा है। तो एक को पशु पान कर रहा है। मेरी प्यारी माता एक अन्न को भोजनालय में तपा रही है। मेरे पुत्रों! देखो, ओज और तेजोमयी प्राणी बन रहा है। और वही मातां ब्रह्मे और वह परमाणु जब पशु पान करता है, तो गो पान करता है, मेरे प्यारे! वह पय दे रहा है, दुग्धाहार करा रहा है, यह कैसा विचित्र प्रभु का यह विज्ञान है बेटा! मेरे प्यारे! देखो, यह दो प्रकार का अन्न जो मानव को और पशु का कहलाया गया है। और तृतीय जो अन्न है, वह मानो देखो, हूत कहा गया है, आहुति देना यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है, अपनी दिव्या से कहता है कि हे दिव्या! आओ, हम अग्नि को देवताओं का मुख बना करके, मानो उसमें हूत करते चले जाएं, मेरे प्यारे! देखो, वह आहुति दे रहे हैं। हूत कर रहे हैं, देवतव को प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि अग्नि देवताओं का दूत माना गया है। इसीलिए हमारे यहां आहुति देने का नाम भी बेटा! देखो, अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। देवतव अपने में ग्रहण करते रहते हैं, मेरे पुत्रों! देखो, अग्नं ब्रह्मणा व्रतं देवाः हे आहुति देने वाले! जब तू अपने हृदय से आहुति देता है, तो अग्नि उसे ग्रहण कर लेती है, और अग्नि सर्वत्र देवताओं में उसे वितरण कर देती है। और करती हुई मानो देखो, यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है। उसी अन्नादं भूतं ब्रह्मणा सब देवता, स्वस्थ हो करके बेटा! देखो, अन्नाद को जन्म देते हैं। मेरे प्यारे! देखो, ये पृथ्वी अमृता है, और यह अग्नि मुनिवरों! देखो, तेजोमयी कहलाती है। यह मानो देखो, अग्नि तेजोमयी है, देवताओं का मुख है, इसमें हूत करना बेटा! वह अन्नाद कहते हैं, उसे अन्न कहा जाता है जो देवता जिसे ग्रहण कर रहे हैं। सूर्य की किरणें अपने में ग्रहण कर रही हैं। चन्द्रमा की कान्ति अपने में धारण कर रही हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह हूत हो रहा है, वह अन्नाद है, जो देवताओं का प्रदान किया जाता है। एक अन्नाद मेरे प्यारे! देखो, प्रहूत कहा जाता है। जो पुरोहितों को प्रदान किया जाता है, वह पुरोहित कहलाते हैं, जो बेटा! जन समूह में लगे हुए है। जो राष्ट्र और देखो, समाज का कल्याण चाहने वाले हैं। वह भी मानो देखो, उसे प्रहूत कहा जाता है, पुरोहित जन है, बेटा! मुझे वह वाक स्मरण आ रहा है, मेरे प्यारे! देखो, एक समय त्रेता के काल में बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि विश्वामित्र एक स्थली पर विद्यमान हो करके विचार विनिमय कर रहे थे, विचार विनिमय करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे भगवन! हे विश्वामित्र! मेरी इच्छा ऐसी है, क्या तुम अमृतां देवत्वं मानो तुम

दण्डक वनों में एक देखो, एक धनुर्याग करो, जिससे मानो देखो, ब्रह्मचारी अपने में अस्त्रों शस्त्रों में युक्त हो जाएं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम।

तो मैं यह विचार विनिमय यह दे रहा था, क्या मुनिवरों! देखो, एक अन्नाद प्रहूत होता है। जो पुरोहित जन होते हैं, राजा के राष्ट्र में बेटा! पुरोहित होने चाहिए, क्योंकि वह भी अन्नाद है, क्योंकि समाज इससे समाज तृप्त होता है। राष्ट्रवाद इससे तृप्त होता है मेरे प्यारे! देखो, उसको प्रहूत कहा जाता है। मुनिवरों! देखो, यह चौथा अन्न कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ये तीन अन्न और होते हैं जो आत्म तत्त्व हो जानने वाले होते हैं, मेरे प्यारे! देखो, मन, प्राण और विचार ये तीन अन्न कहलाते हैं, जिससे बेटा! आत्म का उत्थान होता है। मेरे प्यारे! देखो, मन से विचार मन और प्राण का, दोनों की संज्ञा बन करके तीसरा अन्नाद मानो देखो, विचार की उत्पति होती है। विचार विनिमय करता रहता है, एक स्थली पर बेटा! देखो, मन को प्राण के साथ में विचार और जब वह विचार विनिमय करता रहता है, प्राण और मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है, मेरे प्यारे! देखो, उससे विचार बनते हैं, और इन विचारों को मन ओर देखो, प्राण और विचार का का तीनों का साकल्य बना करके, उसको बेटा! हृदय रूपी यज्ञशाला में साधक जन, साधना करने वाला बेटा! हूत कर रहा है, वह आहुति दे रहा है, जिससे बेटा! देखो, ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो करके, मानव को बेटा! देखो, विवेक की उत्पति हो करके, परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। आओ मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नही आया हूँ विचार केवल ये मुनिवरों! यह कि मानव का मन, प्राण और विचार यही मानव को सार्थक बनाता है विचार विनिमय करता हुआ बेटा! परमपिता परमात्मा की महती को महती को जानने लगता है। वही प्राणी बेटा! मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। जो मेरे प्यारे! देखो, मन और प्राण के द्वारा उन्हें अव्रत करा करके, मुनिवरों! देखो, विचारों की तरंगों को, अपने में लाना एकत्रित कर देता है, तो वह जो हृदय इसमें हृदय में सब स्थिति होती है, प्राणी की बेटा! देखो, किसी भी इन्द्रिय से कोई भी, विषय हो, वह इससे बेटा! हृदय में समाहित हो जाता है, वह हृदय अगम्य में परणित होता हुआ, मुनिवरों! देखो, हृदय वृत्ति बन जाता है वह जिज्ञासु बन करके, यथार्थी बन जाता है, मानो वही ज्ञान में प्रवेश हो करके, परमपिता परमात्मा की महती को जानने लगता है।

अथ योगानुशासनम् ॥ योग दर्शन १.१ P1



अथ योगानुशासनम् ॥ योग दर्शन १.१

अथ । योगानुशासनम् ।

शब्दार्थ- (अथ) अब प्रारम्भ किया जाता है (योग-अनुशासनम्) योग के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र का।

स्वामी सत्यपति

पदार्थः (अर्थ) अब(योगानुशासनम्) योगशास्त्र का प्रारम्भ किया जाता है। सूत्र में “अथ” शब्द का अधिकार का वाचक है, अधिकार, प्रस्ताव, प्रारम्भ, यही एक ही अर्थ के बोधक हैं, समाधिक अर्थ में होने वाली “युज्” धातु से योग शब्द सिद्ध होता है जिसके अर्थ यहां समाधिक के हैं और “अनुशिष्यतेऽनेनेत्यनुशासनम्”=जिससे लक्षण, भेद, उपाय, प्रयोजन आदि प्रतिपादन किये जायं उसको “अनुशासन” कहते हैं॥ भाव यह है कि योग के लक्षणादि को विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करनेवाले योगशास्त्र का प्रारम्भ करते हैं॥ सं०-अब योग का लक्षण कहते हैं-

सूत्रार्थः अब योग के स्वरूप को बताने वाले शास्त्र का प्रारम्भ किया जाता है। "अथ" शब्द अधिकार के लिए है। यह शब्द प्रारम्भ को कहता है। इस शब्द से 'योगानुशासन' नामक शास्त्र प्रारम्भ किया जाता है यह जानना चाहिए। योगानुशासनम् = योग के स्वरूप (लक्षण, भेद, उपाय, फल) को बतलाने वाले शास्त्र का उपदेश किया जाता है। यह ‘योग' शब्द युज् (समाधौ) धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। 'अनुशासन' शब्द 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'शासु अनुशिष्टौ ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। ""योगो अनुशिष्यतेऽनेनेति योगानुशासनम् "" अर्थात् योग का उपदेश जिस शास्त्र के द्वारा किया जाता है वह 'योगानुशासन' नामक शास्त्र कहलाता है। अथवा इसका द्वितीय अर्थ 'पुन: उपदेश' है। यह (योग का) उपदेश सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर एवं वेदों के द्वारा ऋषियों को प्राप्त हुआ। उन्होंने उस उपदेश (योग) का अनुष्ठान किया, साक्षात्कार किया तथा अन्यों को उसका उपदेश दिया। इस परम्परा से प्राप्त योग का महर्षि पतञ्जलि ने ग्रन्थ के रूप में प्रणयन किया। यही परम्परा अनुशासन शब्द के द्वारा कही गई है। योग 'समाधि' को कहते हैं। समाधि चित्त की सब भूमियों में अर्थात् अवस्थाओं में रहने वाला चित्त का धर्म है। चित्त सत्त्व, रजस्, तमस् नामक जड़ पदार्थों से मिलकर बना हुआ एक पदार्थ है। यह जीव का एक ऐसा ही आन्तरिक साधन है जैसे कि हस्तपादादि बाह्य साधन हैं। जिस प्रकार हस्तपादादि साधन जीव के आधीन हैं उसी प्रकार चित्त भी उसी के आधीन है।

चित्त की पाँच भूमियाँ हैं- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जीवात्मा जिस अवस्था में चित्त को विविध विषयों में तीव्रता से चलाता है उस अवस्था को 'क्षिप्त' कहते हैं। उस अवस्था में, जो कार्य हानिकारक होते हैं, उन कार्यों को भी वह कर बैठता है। इस अवस्था में रजोगुण की प्रधानता होती है। सत्त्वगुण तथा तमोगुण गौण रहते हैं। सांख्य एवं योगशास्त्र में गुण शब्द से सत्त्व, रजस्, तमस् नामक द्रव्य ग्रहण किये जाते हैं। इन तीनों का समुदित नाम प्रकृति, प्रधान आदि है।

निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, मूर्छा, आदि अवस्थाओं में जीवात्मा को जब विशेष ज्ञान नहीं होता अथवा विशेष ज्ञान नहीं कर पाता उसको 'मूढ़' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में सत्त्व एवं रजोगुण अप्रधान रहते हैं, तमोगुण प्रधान रहता है।

जिस अवस्था में मनुष्य किसी विशेष विषय पर अपने चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता है तो चित्त में कुछ एकाग्रता आती है। परन्तु वह स्थिति किसी बाधक कारण से भंग हो जाती है, उसको 'विक्षिप्त' अवस्था कहते हैं। बाधक कारण बाह्य, आभ्यन्तर नाम से दो प्रकार के होते हैं; उदाहरणार्थ तीव्र शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि बाह्य तथा अभिलाषा से जनित स्मृति, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा, संशय आदि आन्तरिक कारण। इसमें सत्त्वगुण प्रधान और तमोगुण गौण होता है, कभी-कभी रजोगुण प्रकट होता रहता है।

जिस अवस्था में योगाभ्यासी विवेक, वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने चित्त को योग के लिए अपेक्षित किसी एक विषय में अधिकारपूर्वक बहुत काल पर्यन्त स्थिर कर लेता है, उसको 'एकाग्र' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में 'सम्प्रज्ञात समाधि' होती है। इसमें सत्त्वगुण प्रधान और रजस्-तमस् गौण रहते हैं। इस अवस्था में योगाभ्यासी को पदार्थ का यथार्थ स्वरूप ज्ञात होता है। उसके क्लेश क्षीण होते हैं, उसके अशुभ एवं शुभ सकाम कर्मों की वासनाएँ शिथिल होती हैं और वह असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने में समर्थ होता है। उस सम्प्रज्ञात समाधि के वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत और अस्मितानुगत नाम से चार भेद हैं। इनके विषय में इसी पाद के १७वें सूत्र में बतलाया जायेगा।

जिस अवस्था में योगाभ्यासी सम्प्रज्ञात समाधि की ऊँची अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो उसको उसमें भी दोष दिखाई देने लग जाते हैं; उन दोषों के कारण 'परवैराग्य' उत्पन्न होता है। उस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इसको 'निरुद्ध' अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में 'असम्प्रज्ञात समाधि' होती है। यह ईश्वर साक्षात्कार की स्थिति है।

इनमें से केवल एकाग्र एवं निरुद्ध अवस्था में योग माना जाता है, शेष क्षिप्तादि अवस्थाओं में नहीं। यहाँ पर यह बात विशेष ध्यान देने की है कि ये क्षिप्त आदि पाँच अवस्थाएं चित्त की हैं, जीवात्मा की नहीं। अविद्या के कारण व्यक्ति इन अवस्थाओं को अपनी (अर्थात् जीवात्मा की) मान लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि योगाभ्यासी चित्त को अपने (आत्मा के) अधिकार में नहीं रख पाता और मनुष्य जीवन का मुख्य प्रयोजन जो ईश्वर साक्षात्कार है, उसको सिद्ध नहीं कर पाता।

चित्त की इन पाँच अवस्थाओं में से किसी को दूर करना, अन्य को उत्पन्न करना एक सीमा तक योगाभ्यासी के आधीन है। इसके अनुसार व्यक्ति क्षिप्तादि को हटाकर एकाग्रता को और एकाग्रता को हटाकर निरोध को उत्पन्न कर सकता है। किन्तु असावधानी, आलस्य, प्रमादादि के कारण ऊँची अवस्था से नीची अवस्था को प्राप्त हो सकता है। ऐसी स्थिति में निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि निराश होने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अतः साधक ने जिन उपायों से ऊँची अवस्था को प्राप्त किया था उन्हीं उपायों का उचित प्रयोग करके पुनः ऊँची स्थिति को प्राप्त कर सकता है। कुछ ऐसी स्थितियाँ भी होती हैं जिनमें व्यक्ति प्रयत्न करने पर भी क्षिप्तादि को हटाकर एकाग्र और निरुद्ध अवस्थाओं को प्राप्त नहीं कर पाता, जैसे कि तीव्र रोग, आघात, अतिशीत, अति उष्णता, अङ्ग भंग होने आदि में। परन्तु विशेष उच्च अवस्था को प्राप्त योगी इस स्थिति में चिन्तित और भयभीत नहीं होता, सरलता से उस दुःख को सहन कर लेता है॥"

तस्य लक्षणाभिधित्सयेदं सूत्रं प्रववृते। उस योग का लक्षण करने की इच्छा से यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है।

व्यास भाष्य-संस्कृत

अथेत्ययमधिकारार्थः। योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। योगः समाधिः। स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः। तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न योगपक्षे वर्तते। यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान्कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते। स च वितर्कानुगतो, विचारानुगत, आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः। सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसंप्रज्ञातः समाधिः॥

व्यास भाष्य-देवनागरी

अथ' शब्द अधिकारार्थ है। यह शब्द आरम्भ को कहता है। इस शब्द से 'योगानुशासन' नामक शास्त्र प्रारम्भ किया जा रहा है, यह जानना चाहिए। 'योग' समाधि को कहते हैं। और वह (समाधि) चित्त की सब भूमियों में रहने वाला धर्म है। चित्त की क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध नामक पाँच भूमियाँ हैं। इन भूमियों में से विक्षिप्त भूमि वाले चित्त की समाधि विक्षेप के कारण गौण हो जाने से योग की कोटि में नहीं आती। जो समाधि एकाग्र भूमि वाले चित्त में होती है, विद्यमान पदार्थ को यथार्थ रूप में प्रकाशित करती है, क्लेशों को क्षीण करती है, कर्म के बन्धनों को शिथिल करती है, असम्प्रज्ञात समाधि को सम्मुख लाती है, वह सम्प्रज्ञात योग कहा जाता है। और वह वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत (इन चार अवस्थाओं वाली है), ऐसा आगे स्पष्ट रूप से बतायेंगे। सब वृत्तियों का निरोध होने पर तो असम्प्रज्ञात समाधि होती है॥ योगार्थ प्रकाश ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।

राजर्षि भोज वृत्ति संस्कृत

अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धभिधेयप्रयोजनान्याख्यायन्ते। अथ शब्दोऽधिकारद्योतको मङ्गलार्थकश्च। योगो युक्तिः समाधनम्। युज् समाधौ अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्। योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्। तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः। तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः। तदव्युत्पादनञ्च फलम्। व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्। शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः। अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च कैवल्यस्य साध्यसाधनभावः। एतदुक्तं भवति व्युत्पाद्यस्य योगस्य साधनानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फलमुत्पादयति।

राजर्षि भोज वृत्ति देवनागरी-विज्ञानाश्रमी जी

तत्र को योगः इत्याह " (अनेन सूत्रेण शास्त्रस्य सम्बन्धाभिधेय) इस सूत्र से शास्त्र का सम्बन्ध ध्येय और (प्रयोजनान्याख्यायन्ते) प्रयोजन कहे जाते हैं। (अथ शब्दोऽधि- कारद्योतकः) अथ-शब्द अधिकार का प्रकाशक और (मङ्गलार्थकश्च) मङ्गला- र्थक है। (योगो युक्तिः समाधानम्) योग मेल को कहते हैं। (युज् समाधौ) युज् धातु समाधि अर्थ में होने से। (अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफलैर्येन तदनुशासनम्) व्याख्यान किया जाता लक्षण भेद उपाय और फलों के सहित जिस के द्वारा वह 'अनुशासन' कहलाता है। (योगस्यानुशासनं योगानुशासनम्) योग का अनुशासन योगानुशासन का अर्थ है। (तदा शास्त्रपरिसमाप्तेरधिकृतं बोद्धव्यमित्यर्थः) उस का शास्त्र समाप्ति पर्यन्त अधिकार है ऐसा जानना चाहिये, यह अर्थ है। (तत्र शास्त्रस्य व्युत्पाद्यतया योगः ससाधनः सफलोऽभिधेयः) उस में शास्त्र से प्रतिपादन किया हुआ साधन और फल सहित योग अभिधेय है। (तद्व्युत्पादनश्च फलम्) और उसका प्रतिपादन किया

हुआ फल योग है। (व्युत्पादितस्य योगस्य कैवल्यं फलम्) प्रतिपादन किये हुए योग का कैवल्य फल है। (शास्त्राभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः) शास्त्र और योग दोनों का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भावरूप सम्बन्ध है। (अभिधेयस्य योगस्य तत्फलस्य च) और ध्येय योग का उसके फल (कैवल्येन साध्यसाधनभावः) कैवल्य के साथ साध्य साधन भाव सम्बन्ध है। (एतदुक्तं भवति) सारांश यह है कि- (व्युत्पाद्यस्य योगस्य साध- मानि शास्त्रेण प्रदर्श्यन्ते) प्रतिपादन करने योग्य योग के साधन इस शास्त्र से दिखलाये जाते हैं, (तत्साधनसिद्धो योगः कैवल्याख्यं फल- मुत्पादयति) वह साधन सिद्ध योग कैवल्य नामवाले फल को उत्पन्न करता है॥ : (तत्र को योगः ?) उस विषय में योग क्या पदार्थ है ? (इत्याह) यह भुगले सूत्र से कहा है-अधिकार अर्थात किसी विषयको प्रारम्भ करके अन्त तक उसका वर्णन करना समाधिशास्त्र।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ योग दर्शन १.२ P1



योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ योग दर्शन १.२

योगः , चित्त , वृत्ति , निरोधः ॥

चित्त चित्त अर्थात् अन्त:करण (की), वृत्ति वृत्तियों (का), निरोध: निरोध (सर्वथा रुक जाना), योग: योग है।

चित्त अर्थात् अन्त:करण की वृत्तियों का निरोध सर्वथा रुक जाना योग है।

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

उपासनासमये व्यवहारसमये वा परमेश्वरादतिरिक्त-विषयादधर्मव्यवहाराच्च मनसो वृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणीयेति ॥

पदार्थः चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटा के शुभ गुणों में स्थिर करके परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराईयों में फंस के उससे दूर हो जाता है।

महर्षि दयानन्द-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं। मनुष्य रजोगुण, तमोगुण युक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोधकर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना, निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥ १ ॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। इत्यादि साधन मुक्ति के लिए करे।

शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज

वह द्वितीय विज्ञान है। वह योगेश्वर कहलाता है। जो योगियों में रमण करने वाला, योग में गति करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध करने वाला, चित्त की वृत्तियों को निरोध कर रहा है अथवा उन्हें समेट रहा है, अपने में धारण कर रहा है तो वह जो योगेश्वर बनने जा रहा है, उस योगेश्वर की जो प्रबल गति है, अभ्यागति है, अभ्यास में रमण करने वाला है। वह योगश्चित्त वृत्तियों को निरोध करता हुआ लोक लोकान्तरों के पिछले भाग में सत ही सत में रमण करता है। क्योंकि वह सत में पिरोया हुआ है। इसीलिए वह जो दोनों प्रकार का विज्ञान है वह ऋत और सत दोनों में पिरोया हुआ है। इसलिए वह वैज्ञानिक कहलाता है। विज्ञान में रमण करने वाला महान् वैज्ञानिक बन जाता है। इन दोनों विषयों को समेट करके ज्ञानमय बनता हुआ विज्ञान में प्रवेश करता है।

ओ३म् अपां फेनेन नमुचेः शिरऽइन्द्रोदवर्त्तयः। विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ यजुर्वेद १९.७१

इन्द्रो देवता, गायत्री, षड्जः।

पदार्थः हे इन्द्र! सूर्य के समान वर्तमान सेनापते! जैसे सूर्य, (अपाम्) जलों की, (फेनेन) वृद्धि से, (नमुचेः) अपने स्वरुप को न छोडने वाले मेघ के, (शिरः) घनाकार बादलों को काटता हैए वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वा) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना है, उनको (अजयः) जीत।

ओ३म् य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा । अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज । ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ सामवेद ५८५

पदार्थः (गाः) = वेदवाणियों को (निर् अकृन्तत्) = खूब विश्लिष्ट करता है, एक-एक शब्द को छाँट-छाँटकर उसमें निहित भाव को देखने का प्रयत्न करता है। यह वेदवाणियों का तर्क ऋषि के द्वारा अध्ययन करता है। तर्क से अनुसन्धान करता हुआ यह उन (उस्रियाः) = ज्ञान की किरणों को प्राप्त करता है (ये) = जो (अपि याः) = उस प्रभु को प्राप्त करानेवाली हैं। ये ज्ञान-किरणें वे हैं जो अन्तः (अश्मनि) = [अश्मा भवतु नस्तनूः] आङ्गिरस के पाषाणतुल्य दृढ़ शरीर के अन्दर निवास करती हैं। ऋजिष्वा का यह ज्ञान (ओजसा) = ओज के साथ होता है।

इस प्रकार का जीवन बना सकना इसके लिए इसलिए सम्भव हुआ है कि यह व्(रजम्) = एक बाड़े को (अभितत्निषे) = विस्तृत करता है, जो बाड़ा (गव्यं) = ज्ञानेन्द्रियरूप गौओं को घेरने के लिए है, और जो बाड़ा (अश्व्यम्) = कर्मेन्द्रियरूप अश्वों को घेरता है। यह इन्द्रियों को उस उस विषय से रोककर आत्मवश करने का प्रयत्न करता है। इस जितेन्द्रियता ने ही इसे ऋषि का मस्तिष्क तथा मल्ल का शरीर प्राप्त कराया है। अब यह आङ्गिरस ज्ञान का कवच [ब्रह्म वर्म ममान्तरम्] पहनकर कामादि शत्रुओं का पूर्ण संहार करता है । (वर्मी इव) = कवचवाले की भाँति हे (धृष्णो) = शत्रुओं का धर्षण करनेवाले ! (आरुज) = तू इनका पराजय कर डाल। 'परन्तु इस विजय का कहीं तुझे गर्व न हो जाए, अतः (ओ३म् वर्मीव) = उस प्रभुरूप कवच को धारण करने वाला बनकर (धृष्णो) = हे धर्षण करनेवाले! (आरुज) = शत्रुओं को भङ्ग कर, अर्थात् इस विजय को तू अपनी विजय मत समझ बैठ। यह सब उस प्रभु की शक्ति व कृपा से ही हुआ है ऐसा जान ।

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

एक मानव ऐसा है जो अप्रत अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता हैं वह योग है योग की नाना प्रकार की प्रतिभाएं मानी गई हैं जैसा महर्षि पतञ्जलि जी ने योग की एक ही प्रक्रिया प्रकट की कि अपनी प्रवृत्तियों का निरोध कर लो परन्तु यह निरोध कैसे किया जाता हैं निरोध उस काल में होगा जबकि हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम होगा अब संयम कैसे होगा मानो संयम होगा परमात्मा के चिन्तन से परमात्मा का चिन्तन किया जाएं अध्ययन किया जाएं और मुनिवरों! निदिध्यासन किया जाएं उस काल में मानव अपनी वास्तविक कारण को प्राप्त हो जाता हैं वास्तव में योग की उच्चारण करना मानव के लिए बहुत सहज होता हैं।

एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज से भारद्वाज जी ने कहा था कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो हृदयरूपी गुफा है, मानो यह जो आत्मा का ज्ञान है, इसका जो विद्वान है उसका कोई ऐसा मूल कारण हो जिससे हमारे अन्तःकरण में वह संस्कार न उत्पन्न हों जिन संस्कारों से हमारे आवागमन की एक प्रतिभा बनती रहती है। गाड़ीवान रेवक थे उन्होंने कहा कि आपने यह वाक्य

तो बहुत सुन्दर कहा है परन्तु इसका विचार विनिमय किया जाएं। हमारे ऋषि मुनियों का हृदय बड़ा विशाल और सत्यवादी, स्पष्टवत में प्राप्त होता रहा है। महर्षि रेवक महान तपस्वी थे। ६१ वर्ष तक मौन धारण किया ६१ वर्ष तक उन्होंने निद्रा पान नहीं किया। उन्होंने कितना सुन्दर उत्तर दिया कि हे प्रभु! मैं इस प्रतिभा को अभी तक नहीं जानता क्योंकि इस पर मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। बेटा! उनका हृदय कितना महान होता है। आज हम जितने सत्यवादी बन जाते हैं तो हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बनने लगता है नाना छलों से रहित हो जाता है। बेटा! वह संस्कार स्वतः ही मानव के हृदय में नहीं व्याप्ते जिनसे मानव का आवागमन बनने लगता है। भारद्वाज ने महर्षि रेवक जी को प्रणाम किया और प्रणाम करते हुए वह महर्षि पिप्लाद ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट हो गये। पिप्लाद मुनि ने कहा कि आइये, ऋषिवर! पधारिए। ऋषि ने विराजमान होकर वही प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा ऐसा कौनसा सङ्कल्प है, ऐसा कौन सी प्रतिभा है जिससे आवागमन के संस्कार हमारे अन्तःकरण में प्रविष्ट न होने दें।

उस समय महर्षि पिप्लाद ने कहा कि भाई इस पर विचार विनिमय करेंगे। दोनों ऋषियों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। उन्होंने कहा कि यदि ऐसा कोई कार्य है, तो वह जो आन्तरिक भावनाएं हैं उन आन्तरिक भावनाओं को इतना उज्वल बनाया जाएं इतना पवित्र बनाया जाय कि जिस से यह संस्कार का जो नाना प्रकार का द्वेषवाद है, नाना प्रकार का जो रूढ़िवाद है, मस्तिष्कों में उसका संस्कार उत्पन्न न हो। हमें वह स्वप्नवत को भी प्राप्त नहीं होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे भगवन्! जब हम संसार में रमण करते हैं, नाना प्रकार की औषधियों का पान करते हैं हमारा प्राण इस वायु मण्डल में भ्रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में हम आए हैं, माता अहिल्या की गोद में हम आए हैं तो नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होना स्वाभाविक हो जाता है। उन्होंने कहा प्रभु! इन कार्यों से मानव के द्वारा संस्कारों का जन्म नहीं होता है। संस्कारों का जन्म उस काल में होता है जबकि मानव उन विचारों पर जो इष्ट विचार हैं उन पर टिप्पणी करना प्रारम्भ कर देता है। टिप्पणी के साथ साथ उनमें घृणा होती है और घृणा के साथ ही में अभिमान होता है और अभिमान के साथ में अपनी करूणामयी नहीं होती तो उस मानव के द्वारा उसके संस्कार जन्म ले लेते हैं। वह आवागमन का एक मूल कारण बनता चला जाता है।

देखो, इन्दियों का निग्रह ही अहिंसा परमोधर्म कहलाता गया है। सर्पराज आ गए चरणों के द्वार पर और उनके जपन जापन की क्रियाएं प्रारम्भ हैं जैसा उनका निग्रह है। महर्षि पातञ्जली जी ने कहा है कि चित्त वृत्ति निरोधय चित्त की वृत्तियों को निरोध करने का नाम योग कहलाया गया है, उसी का जापन चल रहा है परन्तु कितना महान तपस्वी! मृगराज आ गएं उनके द्वारा, उनके जपन को श्रवण कर रहे हैं। ऐसे महापुरूषों को मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। उन तपस्वियों का वेद का विचार था, अहिंसा परमोधर्म वाला विचार है उनके द्वारा सदैव रमण करता रहता था।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे सङ्कल्प करा दिया कि तुम सोमरस का पान करो। सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का मानो अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ, जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि

जो मन की गति है, जो संस्कारों को लाती है जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई।

पूज्यपाद गुरुदेवः हमारे ऋषियों ने कहा कि इन्द्रियों का रस लिया जाए। मानो इन्द्रियों का फेम का फेन बनाया जाए। ऐसा ऋषिजन कहते हैं परन्तु देखो इन्द्रियों का फेम क्या इन्द्रियों के विषयों को मन्थन करने के पश्चात जो जो इन्द्रियों में गुण हैं अथवा जो जो उनका विषय है। उन विषयों को एकत्रित करने वाला ही साधक योग में पारायण बन सकता है। इनके विषयों को एकत्रित करने के पश्चात जब रस बनाया जाता है। उस रस को जो योगी पान कर लेता है। वह मन और प्राण दोनों का निरोध करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। हम इस प्रातःकाल की अमृत बेला में उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए वेद की प्रतिभा को जानते हुए हम प्रकृति के मन को विचारते हुए हम अपने ऊपर अनुशासन करने का प्रयास करें। क्योंकि जब तक हमारे जीवन में अपने ऊपर अनुशासन नहीं होगा तो योग में कदापि भी ऊँचे नहीं बन सकेंगे।

मेरी इन्द्रियों का जो विषय है। उससे संसार को दृष्टिपात करना है। चंचलता में नहीं जाना है। इसको विचारना है कि मेरी नेत्रों की ज्योति में से कितनी धाराओं को जन्म होता है, और धाराएं क्या क्या कार्य करती हैं, जब रजोगुणी प्रवृत्ति होती है उस समय नेत्रों की धारा में अशुद्धवाद होता। जब सतोगुणी होता है। जब रजोगुण होता है। तो उसमें कितना रजोगुण होता है, तो ऋषिजन कहते हैं जब सात्विक प्रवृत्ति रहती है जो ३००७ प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। परन्तु जब रजोगुणी होती है तो ६५५२ प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। और जब तमोगुण होता है। उस समय मुनिवरो! मानव का सुकृत हनन होने लगता है। तमोगुणी प्रवृत्ति में तमोगुणी जो नेत्रों की ज्योति है उसमें लगभग ९००० तरंगों का जन्म होता है और उससे मानव का सुकृत हनन हो जाता है। परिणाम क्या कि इस विषय को विचारना है। नेत्र जब सात्विक प्रवृत्ति में होते हैं नेत्रों की ज्योति को विचारता है। वह नेत्रों की ज्योति अग्नि की धाराएं हैं। उन अग्नि की धाराओं को हमें आन्तरिक जगत् में समेट लेना है।

तप के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके और क्योंकि वे सीमा से रहित है और इसीलिए वे सीमा में आने वाले नही हैं, इसीलिए हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहते हैं। क्योंकि वह हमारा पुरोहित है, और पराविद्या को देने वाला हैं। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते रहते हैं, वह हमारा पुरोहित कहलाता रहता है। वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा हैं, क्योंकि मानव परम्परागतों से ही, प्रेरणा का स्रोत रहा है, और प्रेरणा को प्राप्त करता रहता हैं, तो आओ, वेदमन्त्र हमारा कहता है, वर्णनं ब्रव्हा कृतं देवाः क्या वह परमपिता रत्त प्रहा मानो वह सर्वज्ञ हैं, और उसकी सर्वज्ञता मुनिवरों! देखो, एक एक कण कण में व्याप्त हैं वह मानव देखो, ऐसे ओत प्रोत हो रहा है जैसे अन्तरिक्ष में मानो जितने लोक लोकान्तर है वह सब एक उस ब्रह्म सूत्र में पिरोए हुए से दृष्टिपात आते हैं, वह जो ब्रह्माण्ड है, अनन्तमयी ब्रह्माण्ड का वह स्वामीतव करने वाला है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल पुनः से स्मरण आ रहा है। जब बेटा! बालक नाचिकेता यमाचार्य के द्वार पर आए, अपने में कुछ प्रश्न करना चाहता है, और बाल्य नाचिकेता ने कहा हे प्रभु! हम स्वर्ग की कामना

करना चाहते हैं स्वर्ग में जाना चाहते हैं? तो मेरे प्यारे! देखो, यमाचार्य ने कहा ब्रह्मचारी तुम विराजमान हो जाओ, और शान्त की मुद्रा में मुद्रित हो करके, तुम मेरे वाक्यों को श्रवण करो। आज तुम देखो, स्वर्ग में जाना चाहते हो, तो स्वर्ग उसे कहते हैं, जहाँ मानव के गृह में गृह का संचालन होता हो, वह गृह स्वर्ग कहा जाता हैं। और विद्यालयों में जब ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों विद्यमान हो करके, और वह अपने में उद्गीत गाते है, ब्रह्म की गाथा का वर्णन करते रहे हैं, तो वह स्वर्ग कहलाता हैं।

उन्होंने कहा कि तीन प्रकार की अग्नि हमारे समीप रहती है। एक अग्नि वह है जिसमें ब्रह्मचारी तपता है, और द्वितीय अग्नि का नाम जिसमे गृहाश्रम तपा करता हैं। जैसे माता पिता पति पत्नी गृह में प्रवेश होते ही उनका जीवन तपों में प्रारम्भ होना है देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, तपं ब्रह्मा तपं ब्व्हे राष्ट्रदं ब्रव्हा कृतं देवत्वां तपः कि ये संसार मानो तपोमय रहता हैं और बिना तप के मानव का जीवन प्रियता को प्राप्त नही होता। विचार आता है कि तप किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! देखो, उस समय बालक नचिकेता ने यमाचार्य से कहा हे ब्रह्मचारी! ये संसार सर्वत्र मानो एक तपोमय निहित रहता है वायु वेग में तपायमान है, गतिवान बना रही हैं अग्नि अपनें में मानो देखो, तेजोमयी है, व तेजवान बना रही हैं, और वह जो तरलतव है वह तरल ब्रहे वह मानो देखो, आपो कहलाता हैं आपोमयी ज्योतिवान बना रहा हैं। मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक स्वरूप अपने में अपनेपन का ही भान कराता रहता है अपने में मानो वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता हैं तो विचार आता रहता हैं यमाचार्य ने कहा हे नाचिकेत! मानो तुम तीनो प्रकार की अग्नि का पूजन करो और तपोमय रहने के लिए सदैव तुम तत्पर रहो, क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव तपायमान है, प्रत्येक मेरी पुत्री तपायमान रहती हैं परन्तु तपने के पश्चात मेरी पुत्री तपोमयी हो जाती हैं।

राष्ट्र जब ऊँचा बनता हैं जब राजा स्वयं तपस्वी होता हैं मानो देखो, मैं लंका को विजय करके आया हूँ और लंका में मैने नाना प्रकार की प्रतिष्ठ प्रहा मानो देखो, लंका में मुझे रजोगुण भी आया है, तमोगुण भी आया है, रजोगुण, तमोगुण मेरे अन्तःकरण में देखो, ग्रहण किए रहता हैं। हे प्रभु! मेरी इच्छा ये है कि मैं तपस्या करने के लिए जाऊं, और मैं बारह वर्ष के पश्चात अपने राष्ट्र को उन्नत बना सकता हूँ। क्योंकि यदि राजा मे तप नहीं हैं, तमोगुण से सना उसका अन्तर्हृदय है, वह हृदयग्राही नही होता हैं पवित्र नही होता हैं।

तो मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने महाराज शिव को सम्बोधित हो करके कहा, क्योंकि महाराज! शिव स्वयं तपस्वी रहते थे, और वे तपश्चर में रमण करके, अपने राष्ट्र को उन्नत बनाते थे इसी प्रकार राम भी यही चाहते थे, कि मैं राष्ट्र को ऊँचा बनाऊं।

तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, भरत जी से कहा हे भरत! तुम अपने राष्ट्र को भोगो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसको भोग नही सकता, ये भोगवाद की कोई वस्तु नही हैं यहाँ तो मानव को अपने कर्तव्य का पालन करना है, और राजा यदि कर्तव्यवादी नही बनेगा तो भगवन! देखो, राष्ट्रीयता नही कहलाती इसीलिए हे भरत! ब्रहे तुम स्वयं तपस्वी बनो। और भरत ने भी कहा प्रभु! आप तप के लिए जा रहे हैं, और मुझे राष्ट्र के लिए बाध्य कर रहे हैं, ये मेरे विचार में नही आ रहा हैं। हे भरत! वह ब्राह्मण जो होता हैं वह बिना तप और देखो, स्वर संगम के बिना ब्राह्मण ऊँचा नही बनता, और क्षत्रिय जब ऊँचा बनता है, जब वह अपने रजोगुण में तमोगुण की मानो देखो, वृत्तियाँ न आने दे। वह रजोगुण न्याय का वृत कहलाता हैं, उसके गर्भ में सत्य होता है, इसीलिए सत्य को ले करके ही तुम मानो देखो, अपने राष्ट्र को प्राप्त कर पालन करो। बेटा! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, राम तपस्या के लिए

चले गएं और वह भंयकर वनों में बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए जब वनों में पंहुचे तो वहाँ वैश्म्पायन मुनि का दर्शन हुआ और देखो, उनके समीप विद्यमान हो गएं राम ने कहा प्रभु! मैं तप करने आया हूँ, मैं तप की मीमांसा को नहीं जान पा रहा हूँ, तप किसे कहते हैं? मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि वैशम्पायन बोले हे राम! तुम्हें ये प्रतीत नही है, कि राजनं ब्रह्मे तपः ये तप किसे कहा जाता है। आहार का पवित्र सेवन करने का नाम तप है। क्योंकि उसी से हमारी प्रवृत्तियों को निर्माण होता हैं। और यदि अन्नाद उसका पवित्र है तो वहाँ प्रवृत्ति का ऊर्ध्वा में जन्म हो करके और मानव अपने में देखो, सतोगुण बन करके अपने सत में आधारित हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब ये कहा कि तुम तप करो। परन्तु तप कहते हैं इन्द्रियों के साकल्यों को जानने का नाम वही तप है जो इन्द्रियों के साकल्यों को जानता है अथवा इन्द्रियों के विषयों को जान करके अपना साकल्य बना करके बेटा! देखो, ज्ञान और उपार्जन करता है और ज्ञान का उपार्जन करके मानो देखो, हृदय रूपी यज्ञशाला में वह हूत कर रहा हैं प्रहूत कर रहा हैं वह भव्यता को प्राप्त हो रहा हैं।

विचार आता रहता है कि जब राम से ये वर्णन कराया वैशम्पायन ने कि तप ये है तो उन्होंने ये स्वीकार कर लिया। बेटा! देखो, वह कहीं खेचरी मुद्रा में चले जाते, कहीं प्राणायाम करने लगते। मुझे स्मरण हे छह माह तक उन्होंने देखो, वायुमण्डल के प्राण के संचय से बेटा! देखो, पोषक तत्त्वों को ग्रहण किया। और जब जल की इच्छा होती है योगेश्वर को तो बेटा! वहाँ देखो, वह खेचरी मुद्रा से मुनिवरों! शीतली प्राणायाम करता हुआ जल की तृप्ति कर लेता हैं।

मेरे प्यारे! देखो, योग साधना में जब मानव प्रवेश होता हैं तो साधक ये जानता है कि मुझे जितनी भी इन्द्रियों का साकल्य है नेत्रों साकल्य है, वह रूप हैं और देखो, श्रोत्रों का साकल्य शब्द है, और वाणी का, रसना का साकल्य मानो देखो, रस है, षट रस कहलाते हैं और त्वचा का जो वह मानो देखो, साकल्य है वह प्रेम है तो इसी प्रकार मेरे पुत्रों! देखो, घ्राण का जो मानो विषय है साकल्य है वह मुनिवरों! देखो, सुगन्ध कहलाती हैं तो इन सब साकल्यों को एकत्रित करके साधक मेरे प्यारे! देखो, अमृतं ब्रह्मणा वर्णस्सुतम् वह मेरे प्यारे! देखो, अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करता है और वह हृदय को पवित्र बना लेता हैं।

आओ, मेरे पुत्रों! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही देने आया हूँ विचार विनिमय केवल ये कि राम देखो, गायत्री छन्दों का पठन पाठन करने लगे, वाणी को पवित्र बनाने के लिए जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके स्वाहा स्वाहा की ध्वनि से ध्वनित हो जाता हैं अन्तरिक्ष में अपनी वाणी को प्रसारित कर देता हैं मेरे प्यारे! उसी प्रकार राम ने गायत्री छन्दों का पठन पाठन किया और मुनिवरों! देखो, महर्षि वैशम्पायन से समय समय पर देखो, अन्न को ग्रहण करते रहे।

तो विचार आता रहता हैं मुनिवरों! देखो, अमृतं ब्रव्हे इसीलिए बालक नाचिकेता से आचार्य ने कहा हे नाचिकेता! यदि तुम्हें स्वर्ग को लाना है तो माता पिता को गायत्री छन्दों का प्रातःकालीन पठन पाठन करते हुए उनके अङ्ग संग रहने वाले जो बाल्य बालिका हैं, उनको श्रवण करते रहते हैं और जो माता पिता के सुन्दर विचार हैं तो देखो, बाल्यों के भी विचार सुन्दर बन जाते हैं वे भव्यता को प्राप्त हो करके अपने में रत्त हो जाते हैं।

मेरे पुत्रों! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता हैं जब भगवान राम ने इस प्रकार का बारह वर्ष का तप किया। उस अन्न को ग्रहण करते थे जिस अन्न में किसी का अधिकार नही था इसीलिए ऋषि मुनि को विवेक हो जाता है तो बेटा! उन्हें विवेक हो जाता हैं और विवेकी जो पुरूष होता हैं मानो उसमे विडम्बना नही होती और वह विडम्बना से पार होता हैं तो इसीलिए विडम्बिनित नही होना चाहिए। भगवान राम ने बेटा! देखो, बारह वर्ष का तप करने के पश्चात उन्होंने मेरे प्यारे! देखो, भयंकर वन को त्यागा। वह स्थली त्यागी जहाँ एक दूसरा एक दूसरे के शब्द एक दूसरे को मानो मानव को अपने को रत्त कर रहा हैं।

ये कैसा अनुपम जगत है पुत्रों! कैसी अनुपम धारणा है अरे, नाना प्रकार की मालाएं बनती है परन्तु माला भी सूत्र में पिरोई हुई हैं जैसे हमारा जीवन हैं मानो एक एक परमाणु मनका बन करके ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ हैं या उसे आत्मसूत्र कह सकते हैं और उसमें पिरोते पिरोते बेटा! मानव कहाँ चला जाता हैं वाह रे मेरे प्यारे! इतना ऊर्ध्वा में साधक बन जाता है। वह साधना में परणित हो होता हुआ मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगता हैं। राम जैसे सखा बारह बारह वर्षों तक मुनिवरों! देखो, रजोगुण, तमोगुण को शान्त करने में लगे रहेंगें मेरे पुत्रों! देखो, वह राष्ट्र पवित्रता को प्राप्त होता हैं।

सविता याग के द्वारा वायुमण्डल की पवित्रता

तो मुनिवरों! देखो, वह साधना के लिए सविता देव की उपासना करने लगे यज्ञमान कहता है कि हे सविता! देव! जिस आसन पर मैं वास करता हूँ, वह आसन मेरा हिंसा से रहित हो जाए, वह आसन मानो मैं मन, कर्म वचन से किसी प्रकार की हिंसा न करूं, मानो देखो, हिंसा का एक परमाणु भी न रह पाए। मेरे आश्रम को मानो मेरी वह तरंगे न छू पाएं तो ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है, मुनिवरों! महर्षि लोमश जी ने जब ये उपदेश दिया तो कागभुषुण्ड जी अपने में याग करने लगे जब वो सविता देव के याग में परणित हो गए, सविता देव की उपासना करने लगे तो मुनिवरों! देखो, जहां तक उनकी वाणी जा रही थी, वाणी का वाक गमन कर रहा था, तो मुनिवरों! देखो, निकटतम आसन रहने वाला देखो, एक विद्यालय था, वहां महर्षि श्वेतकेतु रहते थे तो श्वेतकेतु के यहां से मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारियों के द्वारा वो अहिंसा देखो, विचार देखो, जब तरंगों में प्रवेश होने लगे तो जहां वो कागभुषुण्ड जी के आश्रम में वाणी जा रही थी तो वहां से वो तरंगें मानो उन तरंगों ने ऐसा गृहत किया, मुनिवरों! देखो, वह तरंगे स्वतः ही विद्यालय में प्रवेश हो गई। तो मेरे प्यारे! देखो, इसीलिए विद्यालय ऐसां ब्रह्मा देखो, आचार्य की वो सविता देव की याग के द्वारा वो जो तरंगे होती हैं, मानो देखो, मन मस्तिष्क जब एकाग्र होता है, और मन की तरंगों में जब तरंगे पवित्र होती हैं। तो जैसे विद्युत मुनिवरों! देखो, जैसे आगे शचि में प्रवेश हो जाती है, मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार देखो, तरंगें भी उन्ही तरंगों को प्राप्त करती रहती हैं। जहां से उन तरंगों का प्रादुर्भाव हुआ था तो कागभुषुण्ड जी जब इस प्रकार याग कर रहे थे, तो कहीं से मानो भ्रमण करते हुए मेरे पुरातन काल में ये वाक तुम्हें प्रगट भी किया कहीं से मुनिवरों! देखो, श्वेत ब्रह्मचारी भ्रमण करते हुए, जैसे याग कर रहे थे जैसे मानो याग में हूत करने लगे जब हूत करने लगे तो जैसे स्वाहा का उदगीत गाया जाने लगा तो आन्तरिक जो विचार थे, वे विचार स्वाहा के साथ में अग्नि की धाराओं पर जब विद्यमान हुए तो मानो देखो, उस आचार्य को कागभुषुण्ड जी को आह्वान कर रही हैं। वो तरंगे की जो देखो, ये हूत कर रहा है। ये हूत करता है, उसके हिंसक विचार बन गए हैं। ये तमोगुणी विचार हैं, इसके ये मानो देखो, कहीं सतोगुणी भावना को नष्ट कर रहा है, तो उसी समय मुनिवरों! देखो, कागभुषुण्ड जी अपने वेदमन्त्र सविता देव के शान्त

कर दिए, और वे बोले नतमस्तिष्क हो करके हे आचार्य! तुम ये जो मानो मेरे याग में तुम्हारा सम्मलित होना है ये वास्तव में देखो, प्रियता नही हैं। ये प्रीति युक्त नहीं हैं। उन्होंने कहा प्रभु! ऐसा क्यों उन्होंने कहा कि मुझे ये आह्वान हो रहा है कि तुम्हारे विचार हिंसक बन रहे हैं तुम किसी को दण्डित करके आए हो, उन्होंने कहा हां प्रभु! ये तो है। उन्होंने कहा मुझे वे तरंगे मेरे अन्तःकरण को स्पर्श कर रही हैं, इसीलिए तरंगों में, तरंगों का जहां मिलान होता है, वही तरंगे मानो देखो, उसकी प्रतिभा में निहित हो जाती हैं, मैं अपनी साधना के लिए, आश्रम में मानो इस प्रकार का याग कर रहा हूँ, मैं ये सविता देव प्रभु से प्रार्थना कर रहा हूँ, कि मेरे आश्रम में कोई तरंग ऐसी अशुद्ध न आ जाए, जिससे उन तरंगों के द्वारा प्रायः मेरा विनाश अनिष्ट हो जाए और मैं अनिष्टता को प्राप्त हो करके, मैं अपने में अपनेपन को न विचार सकूं। मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने याग शान्त कर दिया, और देखो, वह ऋषि वहां से उन्होंने नमस्कार करके, नमः हो करके वहां से ये स्वीकार करके कि वास्तव में मैंने त्रुटियां की हैं और मैं मानो देखो, मैं इसका क्षमा का पात्र हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वहां से वो गमन करते हैं, और भ्रमण करके अपने आश्रम में जा पंहुचे, कागभुषुण्ड जी मानो देखो, इतने में दोनों लोमश के आश्रम में जा पंहुचें, और लोमश मुनि से कहा भगवन! मेरा याग तो मानो भ्रष्ट पथ हो गया है। उन्होंने कहा ऐसा क्यों उन्होंने कहा देखो, ऋषि वृत्तिका का आगमन हो गया था और उन्होंने तमोगुण की तरंगों को वहां प्रसारित किया, उन्होंने लोमश जी ने कहा अरे, तुम्हारा तप ही क्या रहा? तुम्हारा सविता देव क्या है? जो मानो देखो, उनकी पाप तरंगों को वह दूरी न कर सकी, उन्होंने कहा देखो, प्रभु! ये तरङ्गे मानो देखो, मेरे अन्तःकरण को मानो उन्होंने स्पर्श किया है, उन्होंने कहा जाओ सविता की उपासना करो। मेरे प्यारे! वो सविता देवता का पुनः से याग प्रारम्भ करने लगे। उसमें समिधा भी, इसी प्रकार का साकल्य भी उसी प्रकार जिसे चरू कहते हैं, जिससे मानो साकल्य कहते हैं, और सङ्कल्प भी उसी प्रकार का होना चाहिए। मानो होतागण उसमें दूषित नही होने चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, वो सविता देव पुनः से प्रगट हो गया। तो मेरे प्यारे! देखो, विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा प्रगट नही करूंगा। केवल ये तो विचार है क्योंकि सविता देव का अभिप्राय ये है कि हमारा जो देवताओं का धिपति है, वे सविता कहलाता है, मेरे प्यारे! देखो, मन की जितनी धाराएं हैं उनका जो नेतृत्व करने वाला है वह भी सविता देव कहलाता है इसीलिए तुम सविता की उपासना करो, मेरे प्यारे! देखो, कागभुषुण्ड जी ने लगभग मुनिवरों! देखो, एक सौ चौरनवें वर्ष तक उन्होंने लोमश जी के कथनानुसार उन्हीं के विचार, आज्ञा पा करके, उन्होंने इस प्रकार का तप किया। तप करने से उन्हें ये हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे भ्रमण कर रही हैं और तरंगे जैसे जा रही हैं, उनके नेत्रों की ज्योति इतनी तीव्र बन गई हृदय का जब देखो, हृदय में आश्वान प्रकार का निर्माणित हो गया क्या मुनिवरों! देखो, तरंगे जा रही है। नेत्रों के समीप उन तरंगों में ये जान लिया जाता था इन तरंगों में किस प्रकार की तरंगें हैं, किस प्रकार का इसमें परमाणु और तरंगें भ्रमण कर रही हैं मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार की तरंगों को जान लेते थे विचार आता रहता है बेटा! देखो, वे ब्रह्मणे व्रतं वे शान्त मुद्रा में देखो, विद्यमान थे प्राण और मन के ऊपर मानो देखो, मन को उन्होंने सविता देव से उन्होंने जकड दिया, वे सविता देव के बन्धन में बन्धन सूत्र जैसे अपने में देखो, सूत्रित हो जाते है। जैसे यज्ञमान के मङ्गलसूत्र में देखो, आचार्य उन्हें देखो,मङ्गल सूत्र में देखो, सूत्रित कर देता है, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वे अपने में सविता देव से सूत्रित हो गए, वे इस सूत्र में उनका मन मस्तिष्क मानो उसमें ओत प्रोत हो गया। हे मानव! तू याज्ञिक बन और तू प्रत्येक दशा में अपनी आत्मा के अनुकूल क्रियाकलाप करता रह।

वह तेरा सर्वोपरि एक याग है। हूत करना और वायुमण्डल को पवित्र बनाना, देवताओं को प्रदान करना देवताओं के लोक में क्योंकि हम रत्त रहते हैं।



मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां ॥ योग दर्शन समाधिपाद ३.३

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ योग दर्शन समाधिपाद ३३

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज

शब्दार्थः मैत्री , करुणा , मुदिता , उपेक्षणाम् , सुख , दु:ख , पुण्य , अपुण्य , विषयाणाम् , भावनात: , चित्त-प्रसादनम् ॥

सूत्रार्थः सुख - मित्रता। दु:ख - दया। पुण्य - आनन्द। अपुण्य - उपेक्षा। सुखी, दु:खी, पुण्यात्मा और पापात्मा के विषयों में क्रमशः मित्रता, दया, आनंद और उपेक्षा की भावना से चित्त प्रसन्न और स्वच्छ होता है।

भावार्थः मेरे इस मित्र को भले प्रकार सुख बना रहे, इस प्रकार चित्त को मैत्री आदि के तत्पर करने का नाम "भावना" है, सुखी पुरूषों में मैत्री की भावना, इस दु:खी का दु:ख कैसे निवृत्त होगा, इस प्रकार दु:खी पुरूषों में दया की भावना, धर्मात्मा जीवों के धर्म को देखकर "हां इसने शुभकर्म किया" इस प्रकार धार्मिक जीवों में मुदिता की भावना, अधर्मी पुरूषों के पापाचरण को देखकर पाप की उपेक्षा से उनमें उदासीनता की भावना करनी चाहिये। इससे चित्त के ईर्ष्या आदि मल निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् "मैत्री भावना" से ईर्षा, "करूणा भावना" से अपकार की इच्छा, "मुदिता" ओर "उपेक्षा" भावना से क्रोध रूप मल की निवृत्ति हो जाती है, इन ईर्षा आदि मलों की निवृत्ति हो जाने से निर्मल हुआ चित्त ईश्वर प्रणिधान में शीघ्र ही स्थिर होता है॥ तात्पर्य्य यह है कि अभ्यास से शुद्ध हुआ चित्त ईश्वरप्रणिधान के योग्य होजाता है॥ अब पूर्वोक्त मलों से रहित चित्त की स्थिति का अन्य उपाय कथन करते हैं।

शब्दार्थ (मैत्री - करुणा - मुदिता - उपेक्षाणाम्) मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की (सुख-दु:ख-पुण्य-अपुण्य - विषयाणाम्) सुख - दु:ख - पुण्य - अपुण्य विषय वालों में (भावनात :) भावना के अनुष्ठान से (चित्त - प्रसादनम्) चित्त, प्रसन्न और एकाग्र होता है।
स्वामी सत्यपति

सूत्रार्थः - सुख - दु:ख - पुण्य - अपुण्य विषय वाले व्यक्तियों में क्रमशः मित्रता, दया, प्रसन्नता, उदासीनता की भावना के अनुष्ठान से चित्त की प्रसन्नता और एकाग्रता होती है।

व्यास भाष्य संस्कृतः तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत्, दु:खितेषु करुणाम्, पुण्यात्मकेषु मुदिताम्, अपुण्यशीलेषूपेक्षाम्। एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते। ततश्च चित्तं प्रसीदति, प्रसन्नमेकाग्रं स्थितिपदं लभते॥

व्यास भाष्य देवनागरीः उन भावनाओं में से सुख भोगयुक्त सब प्राणियों में मैत्री की, दु:खी प्राणियों में करुणा की, पुण्यात्माओं में हर्ष की और अपुण्यत्माओं में उपेक्षा की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करने वाले उपासक के आत्मा में शुद्ध धर्म उत्पन्न होता है। उससे चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थिति पद को प्राप्त होता है॥

योग प्रकाशः इस सूत्र में चित्त को प्रसन्न करने के उपाय बतलाये हैं। योगाभ्यासी व्यवहार के समय में अनेक प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आता है। यदि वह उनके साथ व्यवहार करना नहीं जानता तो उसकी मन:स्थिति योगाभ्यास के अनुकूल नहीं रहती। इसलिए सूत्रकार ने साधक का किसके साथ कैसा व्यवहार हो यह उपदेश किया। संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं। कोई धार्मिक और सुखी है, कोई धार्मिक होते हुए भी सुख साधनों की न्यूनता के कारण दु:खी है। कोई योगाभ्यासी पुण्यात्मा है। कोई अन्यायकारी अपुण्यात्मा है। इन सबके साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि व्यक्ति का मन प्रसन्न बना रहे। जो सुख साधन सम्पन्न और धार्मिक हैं, उनके साथ मित्रता का व्यवहार करें। क्योंकि कभी-कभी व्यक्ति सुख साधन सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे द्वेष करने लगता है कि ये इतने सम्पन्न क्यों हो गये हैं, इनकी हानि होनी चाहिए। इससे योगाभ्यासी का चित्त खिन्न हो जाता है। खिन्न होने से उसमें एकाग्रता नहीं आ पाती। यदि वह सुख सम्पन्न मनुष्यों को देखकर उनसे मित्रता का व्यवहार करता है तो चित्त प्रसन्न होता है और उससे ईर्ष्या- द्वेष दूर हो जाते हैं। जब व्यक्ति दु:खियों को देखता है तो उनके प्रति घृणा उत्पन्न होती है। घृणा करने से चित्त की प्रसन्नता भंग हो जाती है और दु:खियों का उपकार करना भी छूट जाता है। यदि योगाभ्यासी दु:खियों पर दया करता है तो उनके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और वह उन दु:खियों की तन, मन और धन से सहायता करता है। सहायता करने से उनका दु:ख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है। इससे साधक के मन में घृणा उत्पन्न नहीं होती किन्तु उल्लास होता है। योगाभ्यासी पुण्यात्माओं को देखता हैं तो उनके प्रति द्वेष उत्पन्न हो सकता है। जब उनका सम्मान होता है तब उनके सम्मान को सहन नहीं कर पाता, उनसे द्वेष करने लगता है। द्वेष से चित्त में एकाग्रता नहीं हो पाती। इस द्वेष को दूर करने के लिए उनके प्रति हर्ष की भावना करनी चाहिए इससे योगाभ्यासी के मन में द्वेष उत्पन्न नहीं होता किन्तु हर्ष उत्पन्न होता है। अपुण्यात्माओं को देखकर न राग और न द्वेष करना चाहिए किन्तु उपेक्षा करनी चाहिये। क्योंकि राग करने से अधर्माचरण में रुचि उत्पन्न होती है और उस अपुण्यात्मा जैसा व्यक्ति का जीवन बन जाता है। द्वेष करने से झगड़े उत्पन्न होते हैं जिससे योगाभ्यासी योग मार्ग को छोड़कर लड़ाई-झगड़ों में लग जाता है। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अपुण्यात्माओं के विषय में भी यह इच्छा रखनी चाहिए कि ये भी अधर्माचरण को छोड़कर धर्माचरण करें जिससे इनका दु:ख दूर हो और ये सुखसम्पन्न हो जाएँ। चित्त को प्रसन्न करने के लिए यह भी उपाय है कि संसार के मनुष्य आदि सभी प्राणी ईश्वर के पुत्र हैं। उन सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि ईश्वर हमारी माता, पिता, आचार्य, उपास्य, राजा है और वह हम सबका कल्याण करना चाहता है। योगाभ्यासी यह निश्चय करे कि मैं भी सबका कल्याण करने का पूर्ण प्रयास करूँगा। ऐसा विचार और आचरण करने से चित्त प्रसन्न होता है। इससे चित्त को एकाग्र करने में सफलता मिलती है॥

राजर्षि भोजदेव

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः "मैत्री सौहार्दम्। करुणा कृपा। मुदिता हर्षः। उपेक्षौदासीन्यम्। एता यथाक्रमं सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्। तथा हि सुखितेषु साधु एषां सुखित्वमिति मैत्रीं कुर्यान्न तु ईर्ष्याम्। दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःखनिवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान्न ताटस्थ्यम्। पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्। अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेन्नानुमोदनं न वा द्वेषम्। सूत्रे सुखदुःखादिशब्दैस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः। तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति सुखेन समाधेराविर्भावो भवति। परिकर्म चैतद्बाह्यं कर्म। यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन

प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते। रागद्वेषावेव मुख्यतया विक्षेपमुत्पादयतः। तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता।

राजर्षि भोजदेव वृत्तिः भाष्यः स्वामी विज्ञानाश्रमजीः (मैत्री सौहार्दम्) मैत्री सुहृदय भाव को कहते हैं, बिना उपकार के मित्रता करने को सुहृदय भाव कहते हैं। (करुणा कृपा) करुणा का अर्थ कृपा है। (मुदिता हर्षः) मुदिता हर्ष को कहते हैं। (उपेक्षौदा सीन्यम्) उपेक्षा उदासीनता को कहते हैं (एता यथाक्रमं) यह सब यथाक्रम (सुखितेषु दुःखितेषु पुण्यवत्सु अपुण्यवत्सु च विभावयेत्) सुखियों, दुःखियों, पुण्यात्मा, पुण्य रहित पुरुषों में भावना करे। (तथा हि) उसी प्रकार (सुखितेषु साधु एषां सुखित्यम्) सुखी पुरुषों में इन पुरुषों को सुख है, बहुत अच्छा है (इति मैत्रीं कुर्या तु ईर्ष्याम्) इस भाव से प्रिति करे किन्तु ईर्ष्या न करे। (दुःखितेषु कथं नु नामैषां दुःख- निवृत्तिः स्यादिति कृपामेव कुर्यान ताटस्थ्यम्) किसी प्रकार इन के दुःख की निवृत्ति हो इस प्रकार कृपा भाव ही करे, किन्तु उसके उपायों में स्वयं न फँस जावे। (पुण्यवत्सु पुण्यानुमोदनेन हर्षमेव कुर्यान्न तु किमेते पुण्यवन्त इति विद्वेषम्) पुण्यात्माओं में पुण्य की प्रसंशा करते हुए प्रसन्न होवे, किन्तु यह क्या पुण्य करने वाले हैं, अर्थात् कुछ नहीं इस प्रकार द्वेष न करे। (अपुण्यवत्सु चौदासीन्यमेव भावयेवानुमोदनं न वा द्वेषम्) पापियों में उदासीन भाव रहे, उन के कर्मों का न अनुमोदन करे न विरोध करे। (सूत्रे सुख दुःखादिशब्देस्तद्वन्तः प्रतिपादिताः) सूत्र में सुख दुःखादि शब्दों से सुख दुःख वाले का प्रतिपादन किया है। (तदेवं मैत्र्यादिपरिकर्मणा चित्ते प्रसीदति) इस प्रकार मैत्री आदि कर्मों से चित्त प्रसन्न होता और (सुखेन समाधिराविर्भावो भवति) सुगमता से समाधि का लाभ होता है। (परिकर्म चैतद्वाझं कर्म) यह मैत्री आदि का परिकर्म तो बाह्य साधन है। (यथा गणिते मिश्रकादिव्यवहारो गणितनिष्पत्तये) जैसे गणित विद्या में जोड़ आदि का व्यवहार गणित निर्णय के लिये है। (संकलितादिकर्मोपकारकत्वेन प्रधानकर्मनिष्पत्तये भवति) वह जोड़ादि कर्म उपकारक भाव से प्रधान कर्म की सिद्धि के लिये होते हैं। (एवं द्वेषरागादिप्रतिपक्षभूतमैत्र्यादिभावनया समुत्पादितप्रसादं चित्तं संप्रज्ञातादिसमाधियोग्यं संपद्यते) इस प्रकार मैत्री आदि भावना द्वारा उत्पन्न हुई प्रसन्नता से द्वेष रागादि शत्रुओं का बाध होने पर चित्त संप्रज्ञातादि समाधि की योग्यता को प्राप्त होता है। (रागद्वेषावेव मुख्य तया विक्षेपमुत्पादयतः) राग द्वेष दोनों मुख्य रूप से विक्षेप को उत्पन्न करते हैं। (तौ चेत्समूलमुन्मूलितौ स्यातां) यदि राग द्वेष दोनों मूल से निर्मूल हो जावें (तदा प्रसन्नत्वान्मनसो भवत्येकाग्रता) तब प्रसन्नता बाला होने से मन एकाग्र हो जाता है॥

संसार में चार प्रकार के प्राणी

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज-संसार में चार प्रकार के प्राणी

एक दुःखित प्राणी होता है द्वितीय जिज्ञासु होता है और तृतीय स्वार्थी होता है और चतुर्थ ज्ञानी होता है। ये चार प्रकार के प्राणी हैं जो प्रभु के मार्ग में कुछ गति करना चाहते हैं।

सबसे प्रथम दुःखित होता है वह देवी सम्प्रदा से असुर सम्प्रदा को मानो दोनो का मिलान करना चाहते हैं और वह दोनो को समन्वय करते करतें वह दुःखित हो जाते हैं परन्तु हो नहीं पाता। अब वह प्रभु की आराधना करते हैं हे प्रभु! इस संसार से हमें मुक्त कर, हमें इस संसार से उदासीन बना, हम इस संसार के जो नाना प्रकार जो विडम्बनावाद है, एक मानव दूसरे प्राणी से दुःखित होता

रहता है, उसके कर्तव्यवाद के कारण एक राष्ट्र में प्राणी रहता है उससे राष्ट्रीयता से दु:खित होता रहता मानो समाज में जो वातावरण है, समाज में जो दुर्व्यवहार है उन्हीं से मानव दु:खित रहता है। अब मुनिवरों! देखो, यह जो व्यवहार है यह जो जगत है जिसमें मानव जब दु:खित होता रहता है जब उसे कोई मार्ग उसे प्राप्त नहीं होता है तो वह प्रभु से आराधना करता है कि प्रभु! मैं दु:खित हूँ और मुनिवरों! मैं नहीं चाहता कि यह संसार मेरे समीप आए अब मुझे भगवन! उदासीन बनाईए, और इस जगत से मुक्त कराईए तो बेटा! वह विमुक्त बनने की प्रभु से आराधना करता है वह प्राणी दु:खित होता है वह मानो दु:खित होता है, क्योंकि वह बाह्य जगत को दृष्टिपात करता है तो बाह्य जगत को दृष्टिपात करने वाला प्राणी सदैव दु:खित होता है। वह प्रभु का भक्त होता हुआ प्रभु के मार्ग में विचरण करने के नाते, विचरण करने के पश्चात भी बेटा! वह दु:खित रहता है। तो परिणाम वह मानव संसार में दु:खित रहता है।

अब मुनिवरों! द्वितीय प्रकार का प्राणी जिज्ञासु होता है। उसे जिज्ञासा होती है, क्या यह भी मैं जानना चाहता हूँ इसको भी मैं जानू, जिससे मुझे कहीं प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। मुनिवरों! वह जिज्ञासु प्राणी होता है, जो दर्शनों में, शास्त्रों में मानो देखो, दर्शन और दार्शनिकता में वह पारायण को होने लगता है। मुनिवरों! वह जिज्ञासु होता है, जिज्ञासा से दार्शनिक के द्वारा पर जाता है भक्त के द्वारा पर जाता है। वह मानो देखो, वह जिस मार्ग में, सफलता को उसने प्राप्त किया, उस सफल प्राणी के द्वारा पंहुचता है और अपनी जिज्ञासा प्रगट करता है कि मुझे यह जिज्ञासा है, मैं प्रभु का जिज्ञासु बनना चाहता हूँ, और मेरे हृदय में यह जिज्ञासा है, आप मेरी जिज्ञासा भगवन! स्वीकार करो। मेरे प्यारे! देखो, जब वह सब जिज्ञासुओं के द्वारा भ्रमण कर लेता है, तो उस समय वह अपनी अन्तरात्मा में श्रद्धा, निष्ठा और जिज्ञासा को ले करके बेटा! प्रभु के द्वार पर जाने की उसे आकांक्षा हो जाती है। और वह प्रभु के मार्ग में रमण करने लगता है वह प्राणी बेटा! संसार में जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा किसकी है उसे मानो जिज्ञासा ज्ञान की भी है और अपने प्रभु की भी जिज्ञासा है। मुनिवरों! देखो, वह जिज्ञासु प्राणी ही, संसार में एक मानवता के मार्ग में सफलवत को प्राप्त हो जाता है।

तृतीय नाम का जो प्राणी वह मानो देखो, एक स्वार्थी, मुनिवरों! स्वार्थी प्राणी उसे कहते हैं जो प्रभु के मार्ग का केवल आन्तरिक गुणगान न गाता हुआ, संसार के वैभव के लिए, अर्थ के लिए मानो वह स्वार्थी प्राणी होता है। स्वार्थी जो प्राणी है, वह भी प्रभु का गुणगान गाता है। परन्तु गाता इसीलिए है कि उसे प्रभु की प्राप्ति हो जाएं। स्वार्थी बन जाएं स्वार्थी का अभिप्राय यह कि वो जगत में मान और प्रतिष्ठा मेरे प्यारे!, मान प्रतिष्ठा के लिए प्रभु का चिन्तन करता है। उसे स्वार्थी प्राणी कहते हैं। स्वार्थी मानो ब्रह्मे कृता असतु वह ब्रह्म के दूरी रहता है प्रकृति की लोलुपता में, अर्थ की लोलुपता में सदैव रमण करता रहता है, वह प्राणी द्रव्य का यदि दान भी करता है, वह द्रव्य का दान करता है तो वह भी प्रतिष्ठा के लिए करता है, उस प्राणी की वहाँ दान में रूचि होती है, जहाँ उसकी प्रतिष्ठा हो मानो उसकी मर्यादा ऊँची बनें। मेरे प्यारे! देखो, वह स्वार्थी प्राणी है वृत कहलाता है वह मानो देखो, समाज में मान और प्रतिष्ठा के लिए सर्वत्र कार्य करता है। परन्तु वाक आ जाए तो यह उच्चारण करने लगता है, मैं इतना दानी हूँ मैंने इस प्रकार का दान दिया है, मैंने मानो देखो, समाज और लोक कल्याण के लिए मैंने इतना देखो, मानो वह प्राणी प्रभु का भक्त न हो करके, वह व्यर्थ ही प्राणी कहलाता है।

चतुर्थ प्रकार का जो प्राणी वह ज्ञानी है। बेटा! जो ज्ञानी पुरूष होते हैं, जो ज्ञान में रमण करते रहते हैं वह प्रभु के मार्ग में विचरण करते हुए वह ज्ञान से प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करते हैं। वे ये विचारते हैं कि मैं जो दु:खित हूँ उसका मूल कारण क्या है? मुझे जो जिज्ञासा जागरूक हुई है, जिज्ञासा का मूल कारण क्या है? मानो मैं जो स्वार्थी बना है, उसका मूल कारण क्या है? अब वह विज्ञानमयी कारणों को जानता है। जिज्ञासु वे होते हैं जिनको यह जिज्ञासा होती है कि प्रभु! यह जगत क्या है? मैं माता के गर्भ में आया, गर्भ में निर्माण वेत्ता ने निर्माण किया कौन निर्माण वेत्ता था? क्यों निर्माण हुआ? किसलिए निर्माण हुआ? मेरे जगत में आने का मन्तव्य क्या था? तो वे मानव जिज्ञासु होते हैं। जिज्ञासु अपने आचार्यों के द्वारा अपने को समर्पित करता हुआ यह कहता है कि प्रभु! मेरा इस संसार में आने का उद्देश्य क्या है? मैं यह जानना चाहता हूँ। उस समय आचार्य जो बुद्धिमान होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं वे कहते हैं कि तुम्हारे आने का उद्देश्य है कि तुम किसी वस्तु से दूर हो गए थे।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ गीता ७.१६

रामसुखदास जी महाराज

भाषार्थः हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! चार प्रकार के भक्त मेरा भजन अर्थात् भक्ति करते हैं आर्त (दु:ख अथवा संकट से छुटकारा चाहने वाले), जिज्ञासु (ज्ञान अथवा रहस्य को जानने वाले), अर्थार्थी (किसी पदार्थ अथवा कामना की पूर्ति के लिए), और ज्ञानी (कुछ भी न चाहने वाले अथवा निष्काम रूप से भक्ति करने वाले)।



यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ योग दर्शन २.२९

पदार्थः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्णदत्त जी महाराज

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव का आहार सुन्दर नही हो, शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं माक्रुतम देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं।

तो हे भगवन! हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं यौगिक वाक्य प्रकट करने नही जा रहा हूँ केवल अपने विचार इसीलिए व्यक्त किए है कि यह जो आज का जगत है। यह इतना पृथकता मे क्यों परणित हो रहा है इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सूक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन नही रहां यम नियम के पालन नही रहे।

जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे कि संसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई कोई होता है। परन्तु देखो, ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था।

सारी रात्रि ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता था क्योंकि वेद की परम्परा को नष्ट करने के पश्चात कोई संसार में यह चाहता है कि मैं आज यौगिकवाद प्रक्रिया में ला सकता हूँ तो यह मानव का असम्भव विचार रहा हैं क्योंकि मुझे संसार का अनुभव है वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि हमारे जो वैदिक पद्धति है वैदिक जो यम नियमों का पालन करना है यह मानव के लिए, साधको के लिए बहुत अनिवार्य हैं।

ओ३म् ब्र॒ह्म॒च॒र्येण॒ तप॑सा दे॒वा मृ॒त्युमपा॑घ्नत। इन्द्रो॑ ह ब्र॒ह्म॒च॒र्येण दे॒वेभ्यः॒ स्व१॒राभ॑रत्॥ अथर्ववेद ११.५.१९

पदार्थः (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है। (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियमपालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः) उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है॥ पण्डित क्षेमकरण

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। योग दर्शन २.३८

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

पद पाठः ब्रह्मचर्य, प्रतिष्ठायाम्, वीर्य, लाभः॥

पदार्थः ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य (में), प्रतिष्ठायाम् दृढ़ स्थिति हो जाने पर, वीर्य सामर्थ्य (का), लाभः लाभ (होता है)॥

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर वीर्य लाभ होता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित व्यक्ति के देह में परमेश्वर की विमल ज्योति प्रकाशित होती है।

उपस्थेन्द्रीय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियों पर भी नियन्त्रण रखना चाहिए। आंखों के रूप में जाने से, कानों को शब्दों की ओर दौड़ लगाने से, नासिका को गन्ध की ओर भागने से, जिह्वा को रसपान से, त्वचा को स्पर्श आनन्द में मग्न होने से रोको। सभी इन्द्रियों का निरोधरूपी ब्रह्मचर्य साधक को ब्रह्म साक्षात्कार की ओर ले जाएगा।

ब्रह्मचर्य दो शब्दों के मेल से बना है ब्रह्म और चर्य। ब्रह्म का अर्थ है ईश्वर, वेद, ज्ञान और वीर्य। चर्य का अर्थ है चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन और रक्षण। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा साधक ईश्वर का चिन्तन करे, ब्रह्म में विचरे, वेद का अध्ययन करे, ज्ञान का उपार्जन करे। शक्ति को उच्च स्तर की ओर उन्मुख करना और खाये हुए अन्न को ओजशक्ति में रूपान्तरित कर देना॥

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्य:। मुण्डकोपनिषद ३.२.४

नाअयमात्मा बलहीनेन लभ्य:।

पदार्थः ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति परमात्मा को नहीं पा सकता।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

ब्रह्मचारी कौन

माता मल्दाल्सा के वाक्यों को पान करने वाला ब्रह्मचारी बोला कि हे मातेश्वरी! तुम मुझे ब्रह्मचारी क्यों कहती हो? मैं नहीं जान पाता हूँ कि तुम ब्रह्मचारी मुझे उच्चारण किए जा रही हो? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचरिष्यामि! तुझे ब्रह्मचारी इसलिए कह रही हूँ कि इसमें दो शब्द माने गएं हैं। ब्रह्म है, और चरी है। यह जो चरी है, इसका नाम प्रकृति है और ब्रह्म परमपिता परमात्मा को कहा जाता है। मानो जो दोनो का मन्थन करने वाला है वह मन्थन कर रहा है। ब्रह्मचरिष्यामि, ब्रह्मचारी अप्रतम् जो प्रत्येक मानो आभा को अपने में दृष्टिपात करने वाला है और वह ब्रह्म अस्सुतम देखो, ब्रह्म और चरी दोनों का ही मन्थन करता है। मानो देखो, दोनों के गर्भ में एक मृत्यु देखो, नृत्त कर रही है। मृत्यु को जो दूरी करना चाहता है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। इसीलिए तू ब्रह्मचारी है। क्योंकि तू अपने में महान कहलाएगा। मेरे पुत्रो! जब माता मल्दाल्सा ने यह कहा तो ब्रह्मचारी ने कहा हे माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। यह आपने जो मुझे उत्तर दिया, परन्तु ये जानना चाहता हूँ ब्रह्मचारी कौन है? पुनः यह प्रश्न करने लगा ब्रह्मचारी, कि

ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बाल्य! जो साधक होता है और साधना में प्रवेश करता है, मानो देखो, जो प्रत्येक श्वांस मानं ब्रहे कृतं लोकाः प्रत्येक श्वांस को मानो देखो, तरंग को ब्रह्मसूत्र में जो पिरोने वाला है, वो ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा हे माता! यह भी मैंने जान लिया। परन्तु मेरा यह प्रश्न है कि ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे बालक! ब्रह्मचारी वो है जो मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करना चाहता है। जो प्रकाश की पगडण्डी में प्रवेश कर जाता है और अन्धकार की पगडण्डी से दूरी हो जाता है। क्योंकि दो प्रकार के मार्ग हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक मानो इस संसार का मार्ग है और एक चेतना का, ब्रह्म का, प्रकाश का मार्ग है। जिसे ज्ञानवान ग्रहण करते हैं। हे ब्रह्मचारी! जो ज्ञानवान बनकर के अन्धकार को दूरी करने वाला है वही ब्रह्मचारी कहलाता है।

मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया उन्होंने कहा माता! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, ब्रह्मचारी कौन है? उन्होंने कहा हे पुत्र! ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो इस संसार को विजय कर लेता है और संसार को वो विजय करता है, जो मन को अपने में धारण करता हुआ प्राण में प्रवेश कर देता है और प्राण प्रतिष्ठा विचारों में प्रवेश हो जाती हैं देखो, मन, प्राण और विचार जब ये तीनों एक सूत्र के मनके बन जाते हैं, तो वह ब्रह्मचारी मृत्यु को विजय कर लेता है, और वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा का बाल्य छह वर्ष का ब्रह्मचारी यह प्रश्न कर रहा है।

पुनः उसने ये प्रश्न किया कि हे माता! ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी तुम किसे उच्चारण करते हो? उन्होंने कहा ब्रह्मचारी वह कहलाता है, जो मानो देखो, ब्रह्मणं ब्रभा कृतं जो वसुन्धरा को जानता है। मानो देखो, वसुन्धरा क्या है? वसुन्धरा कहते हैं पृथ्वी को। वसुन्धरा कहते हैं, जो पालन करने वाली है। मानो देखो, वसुन्धरा मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी से लेकर के और मुनिवरों! देखो, माता और वह जो परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरा है, इन तीनों को जानने वाले को बेटा! ब्रह्मचारी कहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता के उपदेशों को, देखो, कृतिका को पान करके वो मौन हो गया। उसने कहा माता! ये मैंने जान लिया परन्तु मेरा एक प्रश्न और रह गया कि ब्रह्म किसे कहते है?

स्थिरसुखम् आसनम् ॥ योग दर्शन २.४६

स्थिरसुखम् आसनम् ॥

स्थिर सुखम् आसनम् ॥

स्थिर एक ही स्थिति विशेष में बिना हिले डुले स्थिर रहना, सुखम् सुखमय अर्थात आरामदायक स्थिति या अवस्था को, आसनम् आसन कहते हैं ॥

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

बेटा! मैं बहुत पुरातन काल में एक एक आसन पर विराजमान होता। क्योंकि आसन भी ऐसा हो जिस आसन पर वह सिद्धासन वाला हो। मेरे प्यारे! देखो, उस आसन पर विराजमान हो करके सोम लताओं को पान करने वाला मेरे प्यारे! सोम लताओं के गुणों

वाला आसन हो। जैसे हमारे यहाँ कुश है। कुश कहते हैं पृथ्वी में मानो एक औषध होती है उसे कुश कहते हैं। परन्तु कुश के नाना प्रकार के भेदन होते हैं। उन्हीं का आसन है, उन्हीं का ओड़ना है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसमें सुगन्धि जाती रहती है, मस्तिष्कों का निर्माण होता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव व्याख्या में जाता है, बौद्धिकता में जाता है तो मानव के जीवन का एक मानवीय क्षेत्र में आभा से युक्त होने वाला निर्माण आभा में रमण करने वाली निर्माण शालाओं का निर्माण होता है। तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेषता प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि नाना प्रकार की जो औषध हैं, आयुर्वेद का हमें पूर्णतया ज्ञान होना चाहिए।

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः। योग सूत्र २.५०

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।

बाह्य आभ्यंतर स्तम्भवृत्तिः देश काल संख्याभिःपरिदृष्टः दीर्घ सूक्ष्मः ॥

बाह्यवृत्तिः प्राणवायु को बाहर निकालकर कर बाहर ही रोकना, आभ्यंतर वृत्तिः प्राणवायु को भीतर भरकर भीतर ही रोकना, स्तम्भवृत्तिः प्राणवायु को न भीतर भरना न ही बाहर छोड़ना अर्थात प्राणवायु जहाँ है उसे वहीं पर रोकना, देश स्थान अर्थात प्राणवायु नासिका से जितनी दूरी तक जाता है वह उसका स्थान है। काल समय अर्थात जितने समय तक प्राणवायु बाहर या भीतर रुकता है।, संख्याभिः एक प्राणायाम को करने में स्वाभाविक रूप से कितने श्वास प्रश्वास हो सकते हैं, उनकी गणना द्वारा परिदृष्टः भली प्रकार देखा व जाना हुआ प्राण, दीर्घ लम्बा व सूक्ष्मः हल्का हो जाता है।

बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति व स्तम्भवृत्ति ये तीन प्राणायाम स्थान, समय व गणना के द्वारा ठीक प्रकार से देखा व जाना से प्राण लम्बा व हल्का हो जाता है।

बाह्याभ्यन्तरवविषयाक्षपी। योग दर्शन २.५१

बाह्याभ्यन्तरवविषयाक्षपी चतुर्थः।

बाह्य, आभ्यन्तर-विषय-आक्षेपी, चतुर्थः ॥

बाह्य - श्वास को बाहर निकाल कर बाहर ही रोकना, आभ्यन्तर- श्वास को भीतर लेकर भीतर ही रोकना, विषय - कार्य या कर्म का, आक्षेपी - रुओत्याग या विरोध करने वाला, चतुर्थः - यह चौथा प्राणायाम है।

श्वास को बाहर रोकने व अन्दर रोकने के विषय अर्थात कार्य का त्याग या विरोध करने वाला यह चौथा प्राणायाम है।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

यह प्राण ही तो सखा है, यह प्राण जब देखो, योगीजन, अपने ब्रह्मवर्चोसी की उपासना करते हैं अथवा साधना करते हैं। वह प्राणायाम करते रहते हैं, मानो कहीं वह सूर्य प्राणायाम करते हैं, कहीं चन्द्र प्राणायाम करते हैं, मानो कहीं संकल्पोमयी प्राणायाम करते हैं और उसी से रेचक और कुम्भक बन करके मानो वह प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, हमारी आत्मा की जो अनुपम तरंगें हैं,

मुनिवरों! देखो, जो चित्त के मण्डल में, जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान हैं। जिनके कारण संसार में आवागमन लगा हुआ है, कोई यहाँ आ रहा है, कोई जा रहा है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो आवागमन लगा हुआ है, वह आवागमन संस्कारों के कारण है। जब तक मानव के शरीर में, संस्कार विद्यमान होते हैं, इन संस्कारों से ही, मानव के जीवन का आवागमन, शरीरों को धारण करता रहता है। परन्तु जब यह प्राण सखा मुनिवरों! देखो, ऊर्ध्वा को प्राप्त करने लगते हैं यौगिक जन, साधक, जब साधना करता है तो वह संकल्पोमयी प्राणायाम करता है। मानो सूर्य स्वर से, प्राण की उर्ध्वा गति बनाता है, चन्द्र स्वर से उसकी ध्रुवा गति बनाता है मानो कहीं ध्रुवा से उर्ध्वा में, कहीं उर्ध्वा से ध्रुवा में, इस प्रकार जब प्राणायाम करता है तो मन की प्रतिभा उसमें रत्त हो जाती है। मेरे प्यारे! देखो, इन दोनों का एकोकीकरण प्रारम्भ होने लगता है। जब इनका एकोकीकरण होता है तो वह संस्कारों का क्षय होने लगता है। मानो देखो, संस्कारों को वह जानने लगता है। लघु मस्तिष्क में, मुनिवरों! देखो, वहीं प्राण को ले जाता है। रेचक करता है पूरक करता है कुम्भक करता है।

बाह्य आभयन्तर रेचक व कुम्भक प्राणायाम महर्षि दयानन्द

ओ३म्' को ईश्वर के दर्शन का साधन बनाने का यह ढंग है कि यम और नियम के व्रत पूरे करके, दृढ़ आसान लगाकर रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम की जो विधि महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सर्व साधारण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' में अपने पूरे अनुभव से लिखी है, उसके अनुसार प्राणायाम करें। स्वामी जी लिखते हैं।

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है ,वैसे प्राण को बल से बाहर फेंककर,बाहर की यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकलना चाहें,तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें,जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो;परन्तु मन में 'ओम्' इसका जप करते जायें।इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।'बाह्य विषय'अर्थात् बाहर की अधिक रोकना,दूसरा'आभ्यन्तर'अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये उतना रोक के,तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना,चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर आने लगे,तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर लें;और जब बाहर से भीतर आने लगे,तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये।ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं।बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र,सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होता है बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा।स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

अन्तरात्मा से वाणी द्यौ में प्रवेश

हे यज्ञमान! तेरी वाणी अन्तरात्मा से पवित्र हो करके स्वाहा को उद्गीत रूप में गाती रहेगी। तो मानो देखो, तेरा चित्र द्यौ लोक में प्रवेश करता रहेगा और द्यौ लोक में रथ बन करके तू वह द्यौ को प्राप्त होगा और यदि तेरी वाणी द्वितीय मन्त्र कहता है, वाणं ब्रहे देवं ब्रह्मा होतां ब्रव्ही सम्भवा द्यौं ब्रव्हो त्रि वर्धम लेकं ब्रहा मेरे प्यारे! वेदमन्त्र कहता है यदि यज्ञमान की वाणी पवित्र नही होती है तो वह जो रथ है वह द्यौ पर मानो देखो, इस पृथ्वी और द्यौ के मध्य में वह नष्ट हो जाता है द्यौ से मानो देखो, पृथ्वी के मध्य में नष्ट हो जाता है। यह बड़ी विचित्र वार्ता है बेटा! यह प्रभु के मानो देखो, उस वेदमन्त्र में यह शब्द और यह विज्ञान की आभा आई, तो ऐसा क्यों? तो मेरे प्यारे! देखो, शब्द अशुद्ध होगा, मन से नहीं होगा, प्राण और विचार वहां नही होगा। तो मानो देखो, वह शब्द द्यौ लोक में शुद्ध बन करके नही जा सकता है। वह मानो देखो, भू में गमन करेगा, स्वः में जा करके मानो देखो, भू में जा करके वह नष्ट हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, शब्द कितने प्रकार के बने हैं। मानो देखो, कुछ शब्द ऐसे होते हैं। जो द्यौ लोक को चले जाते हैं। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो भू लोक में रह जाते हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं जो भुवः लोक में गमन करते हैं। तो मुनिवरों! देखो, वह वही समापन हो जाते हैं।

वेदमन्त्र के द्वारा अशुद्ध तरंगों को निगल जाना

आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणागान गाया जाता है। अथवा उसका जो ज्ञान और विज्ञान हैं, मानो उसका प्रायः वर्णन आता रहता है प्रत्येक वेदमन्त्र के अध्ययन करने से, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एक एक वेदमन्त्र में, सर्वत्र सृष्टि का वर्णन हो, मानो एक एक परमाणुवाद, जो अपने में गाथा गा रहा हैं, मानो उस गाथा में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का ज्ञान और विज्ञान विद्यमान रहता हैं। हमारे यहाँ जब मन्त्रों की ध्वनियां होती हैं, तो मानो उस ध्वनि में भी कोई विज्ञान है, उस ध्वनि में भी उच्चारण करने के कुछ प्रकार हैं, मानो वह प्रकार भी वैज्ञानिक तथ्यों से, जब विचार विनिमय करते हैं, तो उसमें कुछ तरंगें ऐसी होती है, जो अशुद्ध तरंगों को निगल जाती है। और अपनी पवित्रता वह जो ध्वनि रूप में है, वह अपनी पवित्रता का प्रायः प्रदर्शन करती रहती हैं। मानो इसी प्रकार, आचार्यों ने इसके ऊपर बहुतसी टिप्पणियां की बहुतसा विचार दिया हैं, उन्होनें सार्वभौम एक विचार दिया, कि संसार में मानव की ऐसी ध्वनि होनी चाहिए, ऐसा व्यवहार होना चाहिए, जिस व्यवहार में वाणी का संतुलन बना रहे, और वाणी वह ब्रह्म की गाथा ही गाती रहे। मानो देखो, ब्रह्म की जो गाथा है, ब्रह्म का जो व्यापक वर्णन हैं, वह प्रायः एक एक ध्वनि के गर्भ परणित होने से हैं, परन्तु जब इसके ऊपर हम विचार विनिमय करते हैं, तो वह मुनिवरों! हम उस क्षेत्रों में चले जाते हैं, जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके, मानो अपनी ध्वनियां में रमण करते रहे हैं, और वायुमण्डल, मानो जो व्यापकता में रमण कर रहा है, उसके ऊपर प्रायः चिन्तन और मनन करते रहे हैं। और मनन करने के पश्चात, वह विज्ञान की, उस महान गम्भीर तरंगों में, तरंगित हो गएं है, जिन तरंगों को जानने के पश्चात, विज्ञान में कोई और शेष नही रहता।

मेरे प्यारे देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे तुम्हारी वाणी पवित्र हो जाए, और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए, और वायुमण्डल का शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए।

मेरे प्यारे परमपिता परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर प्रदान किया।

गृह स्वामी-गृह स्वामिनी की विडम्बना

हे यज्ञमान! मेरा हृदय तो तेरे हृदय के साथ होता है परन्तु देखो, किसी कार्य को करने से पूर्व उसकी निष्ठा पवित्र होनी चाहिए परन्तु केवल ऐसा नही क्या मानव अपने जीवन को रुढ़िवाद में ले जाए रुढ़िवादी वह प्राणी होता है मानो जो यह स्वीकार करता है क्या यह रुढ़ि है मानो देखो, यह तो करना है, परन्तु ऐसा नही उसको कर्तव्यवाद की दृष्टि से करना चाहिए। परन्तु कर्तव्यवाद एक निष्ठावानी एक आभा कहलाती है परन्तु देखो, जिस कर्तव्य को तुम करना चाहते हो उस कर्तव्य में तुम्हारे हृदय की निष्ठा होनी चाहिए। परन्तु यह संसार तो परम्परागतों से इसी प्रकार चला आ रहा है, रहा यह कि हमारे यहां बहुत से महापुरुष इस प्रकार के हुए हैं क्या वह महापुरुष बने हैं और उनके गृह में जो गृह स्वामिनी है परन्तु देखो, वह उनका सहयोग नही दे सकी ऐसे बहुत से ऋषि मुनियों के जीवन मुझे स्मरण आते रहते हैं। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से भी कई काल में यह प्रगट कराए हैं क्योंकि जो हृदय से मानो गृह स्वामिनी अपने मानो कर्तव्यवाद में रत्त नही रहना चाहती तो हमारे जन्म जन्मान्तरों के मानो संस्कारों में कोई न कोई मानो इस प्रकार की विडम्बना रही है।

मौन साधना याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का यह नियम रहा है, कि विद्यालय में, जब ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराते रहते थे, तो बेटा! वह समय-समय पर, मानो देखो, मौन धारण कर लेते थे, मौन का अभिप्रायः यह है, कि मन, कर्म वचन वे तीनों एक सूत्र में लाने का प्रयास करते रहते थे। क्योंकि मौन रहना भी हमारे यहां एक साधना का एक बड़ा एक विचित्र स्वरूप माना गया है। हमारे यहां जितने भी महापुरूष हुए हैं, हमारे यहां ऋषि मुनि मानो प्रायः मौन धारण करते रहते थे, मौन रहने से यह लाभ होता है, क्या मुनिवरों! देखो, उसकी मानसिक प्रवृत्ति ऊर्ध्वा में गमन करती रहती है, और जब मानसिक प्रवृत्ति ऊर्ध्वा में गमन करती रहती है, तो बेटा! एक मानव की, मानसिक साधना बन जाती है। और मानव की जब मानसिक साधना बन जाती है।

मौन साधना के उपरान्त वेदगान

तो बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब बेटा! देखो, यहां चाक्राणी गार्गी ने भी अपने में संयम बनाया, साधना के क्षेत्र में प्रवेश हुई, तो बेटा! बारह वर्ष का, उन्होंने मौन धारण करने का देखो, मुनिवरों! संकल्प किया, और वह बारह वर्ष तक मौन रह करके, मानसिक चिन्तन होने लगा, बेटा! उनका आत्म बल इतना बलिष्ठ हो गया, मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है, जब भयंकर वनों में चाक्राणी गार्गी, बेटा! वेदों का गान गाती रहती थी, तो गान गाते समय बेटा! कोई पवित्र जीवन बन गया, क्या बेटा! देखो, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा का, उनके हृदयों में एक उदगार उत्पन्न हो गया। ओर वह देखो, ऋषि कन्या के इस महान, देवी के चरणों का स्पर्श करते रहते थे। तो मेरे प्यारे! सिंहराज क्या, सर्पराज क्या, तो ये देखो, मानसिक प्रवृत्ति बन जाती है, जब मानव को इतनी निर्भयता और परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में जाने के पश्चात, मानो इतना निर्द्वन्द्ध हो जाता है, कि परमात्मा ही परमात्मा उसे दृष्टिपात आता है। बेटा! देखो, एक-एक वेदमन्त्र एक मानो देखो, जैसे संकलन होता है, एक दूसरे से शब्द

सम्बन्धित होते हुए, सुगठित होता है। तो यह बेटा! माला बन जाती है, और उस माला को धारण करने के पश्चात, मानवीयता अपने में अभ्योदय होती रहती है।

वाणी की शक्ति से ऊर्ज्वा हमारे यहां एक समय ऋषि मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ और ऋषि मुनियों के मध्य में एक वाक्य उत्पन्न हुआ क्या मानव को ऊर्ज्वा कहां से प्राप्त होती है, जिस ऊर्ज्वा शक्ति के द्वारा मानव अपना नृत्य करता रहता है? तो मुनिवरों! सबसे प्रथम आचार्यों ने यह कहा कि हम जो वाणी से उद्गीत गाते हैं, मानो उस वाणी के उद्गीत में तीनों प्रकार के रुप उसमें निहित होते हैं, उन रूपों में मानो रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण भासता रहता है। तो विचार आया, प्रसंग यह कि ऊर्ज्वा कहां से प्राप्त होती है? तो ऋषि मुनियों ने अपना वक्तव्य देना प्रारम्भ किया। महर्षि प्रव्हाण ने यह कहा कि हमें ऊर्ज्वा प्राप्त होती है, वह सबसे प्रथम मानो मानव की वाणी से होती है, क्योंकि वाणी शब्द स्रोत है। मुनिवरों! देखो, वाणी का उद्गीत गाता हुआ मानव, मानव को सजातीय बना देता है, प्राणी, प्राणी को सजातीय बना देता है, तो मानव के शब्दों में एक ऊर्ज्वा है और उस ऊर्ज्वा को लेकर मानव प्रकाशित होता है, क्रियावान बनता है। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है कि वाणी में यथार्थता होनी चाहिए, सत्यवाद होना चाहिए। परन्तु यह वाक्य उच्चारण करके महर्षि प्रव्हाण अपने आसन पर विद्यमान हो गए।

नदियों के तटों पर तपस्या

"ओ३म् उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णां सं॑ग॒थे च॑ न॒दीना॑म्। धि॒या विप्रो॑ अजायत॥ ऋग्वेद ०८.००६.२८

पदार्थः (गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥ मनु स्मृति २.१०४

पदार्थः (अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

व्याख्याः महर्षि दयानन्द

आगे चलकर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है जंगल मे अर्थात् एकान्त में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्यकर्म को करता हुआ 'सावित्री' अर्थात् 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण, अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। इस प्रकार प्राणायाम तथा 'ओ३म्' का जप करता हुआ साथ ही भृकुटि या आज्ञा चक्र में ओ३म् को ध्यान से लिखा देखे। महर्षि दयानन्द ने उपासना के लिए एकान्त देश का भी उल्लेख किया है,इसलिए इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना उचित समझता हूँ।

व्याख्याः श्रृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकलपोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिञ्जनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकलपोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकलपोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है। व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-१, सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

गोमेध याग के बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो, ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखोए किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो, वह भी गोमेध याग कर रहा है।

हमारे यहाँ आयुर्वेद की औषधियों को पान करके ऋषि योगाभ्यास करते रहे हैं और यागी बनते रहे हैं क्योंकि जब तक प्राण का संचार अच्छे विशुद्ध रूप से नही हो पाता तब तक हमारा योगी बनना असम्भव हो जाता है। क्योंकि प्राण विशुद्ध रूपों से गति करना प्राण का अपने में संघर्ष न करना बहुत अनिवार्य है। हमारे आचार्यजन एक संकल्पोमयी प्राणायाम किया करते थे। पुरातन काल में ये प्रायः हम भी कराते रहे हैं। संकल्प से प्राणायाम होते हैं। जैसे हमने संकल्प किया है सूर्य और चन्द्रमा स्वरिञ्जनी होती है। जब संकल्प के द्वारा उनका आदान प्रदान होता है। तो संकल्पोमयी प्राणायाम मानव के बहुत से रूग्णों को और चंचलता को समाप्त कर देता है। मुझे बहुत पुरातन काल की एक वार्त्ता स्मरण है। एक समय मगध राष्ट्र में चले गए थे, बहुत पुरातन काल हुआ। मगध राष्ट्र में एक सरूचिकेत नामक ऋषि थे वह राष्ट्र मे बड़े प्रसिद्ध थे वह भयंकर वनों रहते थे। नद नदियों के तट पर रहते और ब्रह्मचारियों को कुछ शिक्षा भी देते रहते, एक ब्रह्मचारी उनके द्वारा ऐसा आ पंहुचा मनोबल चंचल बन गया, चंचल कैसे बना जिसे उन्माद के रूप में परिणत करते हैं। इसे उन्माद के रूपों में वर्णन करते रहते हैं। सरूची ऋषि ने उस ब्रह्मचारी को अपने आश्रम में आसन दिया। वह उसके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। अन्वेषण क्या था, उनके त्रि जो दोष हैं उन दोषों के ऊपर अन्वेषण और शोधन कर रहे थे समुद्र जल की प्रतिक्रियाओं में जल में उन्हें लाना जल में तपाना और संकल्पोमयी प्राणायाम करने से मस्तिष्क की सूक्ष्मवाहक नाड़ी है। जो अग्नि में किसी कारण किसी आवेश से या किसी के आक्रमण से नाड़ी संकुचित हो जाती है, नाड़ियों में संकुचित पन आ जाता है। वह नाड़ियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। स्पष्टीकरण होने से बुद्धि का विकास हो जाता है और बुद्धि का विकास होने से उसका रूग्ण समाप्त हो जाता है।

तुम्हें केवल यह परिचय देने आया हूँ कि यहाँ बहुत सी नाना प्रकार की औषधियां है, जिनको पान करने से मानव महान बन जाता है, पवित्र बन जाता है, सर्पगन्धा औषधि के आसन से यदि योगेश्वर ये चाहता है, कि मैं ध्यानावस्थित हो जाऊं, तो ध्यानावस्थित हो करके, वह परमात्मा से अपना मिलान करने लगता है हमारे यहाँ ऐसे ऐसे कुशा के आसनों पर विद्यमान हो करके नदियों के तटों पर विद्यमान हो करके, ऋषियों ने बहुत सा अनुसन्धान प्रभु को निहारते हुए प्रभु से वार्त्ता प्रगट करते रहते थे। हमारे यहाँ नाना रूपों में, कुशा मानी जाती है। कुशा के आसन पर सर्प नही आ पाता, और कोई प्राणी उस अव्रत नही कर पाता तो आसन पवित्र माना गया है। कुशा भी हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बारह प्रकार की होती है। बारह प्रकार की कुशाओं को ले करके यदि उसको जल में तपाया जाता है। तपाने से उनका रस बनाया जाता है रस बना करके उसको जल की कृतिका बना करके जब खरल रह जाता है। उसको मधु वर्णिता में पान करने से वह सर्प जैसे विषैले प्राणियों को विजय करने वाला बन जाता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-२, महापुरुष ऊंचे ऊंचे भवनों में प्राप्त नही होते

मैं तुम्हें प्रारम्भ कर रहा था, राजन! कि महात्मा ज्ञानश्रुति की चर्चा कर रहा था, महात्मा ज्ञानश्रुति मानो देखो, वह भी जब राष्ट्रीय पद्धति में अप्रतम् देखो, राजा ज्ञानश्रुति हमारे यहाँ बड़े भव्य राजा थे और राजा के हृदय में मानो देखो, जब राष्ट्र को त्याग करके, वह आत्मज्ञान के लिए, आत्मवान बनने के लिए तत्पर होते हैं, तो राष्ट्रीयता उसी काल में ऊँची बन जाती है।

मानो देखो, राजा ज्ञानश्रुति एक समय बेटा! देखो, अपने राष्ट्र में, मंत्रियों के मध्य में मानो देखो, विद्यमान थे और मध्य में विद्यमान हो करके महाराजा ज्ञानश्रुति ने अपने मंत्रियों से कहा हे मन्त्रीगणों! मेरी इच्छा यह है कि मैं किसी महापुरुष के द्वारा अपने को समर्पित करके, मैं आत्मवान बनना चाहता हूँ। क्योंकि आत्मवान बनना बहुत अनिवार्य है राजा जब त्याग करता है, राष्ट्र का, तो उस समय वह आत्मवान बनने के लिए और राष्ट्र को जेठे पुत्र को दे करके ही देखो, वह अपने को त्यागं ब्रह्मे वह भयंकर वनों में चला जाता है।

मानो देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति के इन शब्दों को पान करते हुए, मन्त्रीगणों ने वहाँ से आज्ञा पा करके मुनिवरों! देखो, वह भ्रमण करते हुए, ब्रह्मवेत्ता के लिए सदैव तत्पर हो गये। उन्होंने यह कहा था, कोई भी ब्रह्मवेत्ता हो मानो उसके मुझे दर्शन करके, उसके चरणों की वंदना करनी है। मेरे प्यारे! देखो, सम्भव ब्रहे कृतम् मुनिवरों! देखो, मन्त्रीगण भ्रमण करते हुए बेटा! देखो, राष्ट्र गृहों में पहुँचे, राष्ट्र गृहों में ब्रह्मवेत्ता को प्राप्त करने लगे, तो ब्रह्मवेत्ता नहीं प्राप्त हुआ। मेरे प्यारे! वह द्रव्यपतियों के गृहों में पहुँचे, वहाँ भी ब्रह्मवेत्ता नहीं थे, मेरे प्यारे! देखो, जब वह पुनः राजा के समीप आये, राजा से कहा प्रभु! हमें किसी ब्रह्मवेत्ता का दर्शन नहीं हुआ। तो उन्होंने कहा कहाँ गये? उन्होंने कहा, पृथ्वी तल पर, प्रत्येक राष्ट्रगृहों में, प्रत्येक द्रव्यपतियों के गृहों में, हम पहुँचे, हमें कहीं भी ब्रह्मवेत्ता प्राप्त नहीं हुआ।

महाराजा ज्ञानश्रुति बोले कि हे मंत्रियों! देखो, ब्रह्मवेत्ता तो कहीं भयंकर वनों में तुम्हें प्राप्त होगा। देखो, नदियों के तटों पर, जहाँ वे, परमपिता परमात्मा का दर्शन करते हैं आत्मवान बनने के लिए मानो जो सदैव तत्पर होते हैं वे भयंकर वनों में होते हैं। मेरे प्यारे! देखो, वहाँ होते हैं जहाँ ऋषि का आसन पृथ्वी होता है और ओढ़न उसका अन्तरिक्ष होता है और मानो दिशाएं उसके पांसे बन करके मानो देखो, उसकी कृतियों में रत्त होने वाले हो। तो मेरे प्यारे! देखो, मंत्रियों ने वहाँ से गमन किया, भ्रमण करते हुए बेटा! देखो, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे, तो महात्मा रेवक मुनि महाराज जिनको बेटा! एक सौ पांच वर्ष तक गाड़ी के नीचे व्यतीत किए हुए हो गएं थे। अपने प्रभु का चिन्तन करते हुए, आत्मवान बनते हुए, ब्रह्मवेत्ता कहाँ बेटा! मानो किस स्थली पर ब्रह्मवेत्ता रहते हैं, जहाँ भयंकर वनों में बेटा! जलाशय गमन कर रहा हो, और वह देखो, एक सौ पांच वर्ष तक बेटा! गाड़ी के नीचे तपस्या करते करते व्यतीत हो गया था।

तो मेरे प्यारे! देखो, राज्यं ब्रहो अस्सुतम मुनिवरों! देखो, जब मन्त्री उनके समीप पहुँचे, तो महाराजा गाड़ीवान रेवक मुनि ने कहा आईए, मन्त्री जी, पधारिए। मन्त्री बड़े आश्चर्य में हुए। मन्त्री ने कहा प्रभु! आप मुझे कैसे जान गए हैं? उन्होंने कहा कि मैं आपको इसलिए जानता हूँ कि आप महाराजा ज्ञानश्रुति जो मानो देखो, मनुवंश में जो जन्मत्तं राजा है मानो देखो, वह बड़े धर्मात्मा, महान और तपस्वी हैं आप वहाँ से विराजे हैं। ब्रह्मदं ब्रह्मे मेरे प्यारे! उन्होंने स्वीकार कर लिया। मन्त्री ने कहा प्रभु! यथार्थ है। वहाँ से वार्ता

प्रगट करके, कुछ ब्रह्मवाद की, महामन्त्री ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते बेटा! अयोध्या में पहुँचे। अयोध्या में आने के पश्चात महाराजा ज्ञानश्रुति से कहा प्रभु! एक ब्रह्मवेत्ता का दर्शन हुआ है। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम!

मेरे प्यारे! देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति अपने अस्त्रों शस्त्रों से और आभूषणों से मानो देखो, नाना द्रव्य ले करके, वह महापुरुष के, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे, और गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने कहा, आइये, राजं ब्रह्मे मुनिवरों! देखो, कैसे आए ब्रह्मणं ब्रह्मे? उन्होंने कहा प्रभु! मैं ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिए आया हूँ। उन्होंने कहा परन्तु तुम तो शुद्र हो। मेरे प्यारे! देखो, जब राजा ने यह विचारा, जब मुद्रा अर्पित करने लगे, तो उन्होंने राजा को जब शुद्र कहा तो ज्ञानश्रुति उन मुद्रा को ले करके, अपने गृह में पहुँचे।

गृह में विचारने लगे, अपनी पत्नी से बोले देवी! मैं आज देखो, ऋषि के द्वार पर पहुँचा। तो ऋषि को जब मैं द्रव्य समर्पित करने लगा, तो उन्होंने मुझे शुद्र कहा है। मुझे शुद्र की संज्ञा प्रदान की है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने विचारा कि द्रव्य सूक्ष्म है। तो मुनिवरों! देखो, बहुत सा द्रव्य ले करके, राजा ने गमन किया। ऋषि के द्वार पर ब्रह्मदं ब्रहे जब चरणों में समर्पित करने लगे, तो राजा से ऋषि ने कहा हे राजन! तुम शुद्र हो। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने जब शुद्र कहा तो पुनः वह अपने राज्य अयोध्या में आ पहुँचे, अयोध्या में बोले कि हे देवी! मुझे तो ऋषि ने पुनः यह कहा है कि तुम शुद्र हो। उन्होंने कहा प्रभु! द्रव्य सूक्ष्म है। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक रथ को सजातीय बना करके, रथ को मानो स्वर्ण के आभूषणों से, उसे सजातीय बना करके, उसमें द्रव्य ले करके बेटा! देखो, मणि इत्यादियों को लेकर के, उन्होंने, वहाँ से गमन किया।गमन करके, जब ऋषि को जा करके समर्पित करने लगे तो उन्होंने पुनः उन्हें शुद्र कहा।

मेरे प्यारे! देखो, वे पुनः अयोध्या में आए, तो राजा अब यह जानकर, चिंतत करने लगे कि ऐसा क्यों? उन्होंने मन्त्रीगणों की एक सभा उपस्थित की, और उन्होंने कहा ऋषि ने मुझे शुद्र कहा है। द्रव्य देने के पश्चात भी, रथ सजातीय देने के पश्चात भी, मुझे शुद्र कहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मणं ब्रह्मे मंत्रियों ने कहा प्रभु! कोई चिन्तन किया जाए इस सम्बन्ध में, तो एक वृद्ध सुकृत नाम के उनके महामन्त्री थे उनके पिता के समय के, उन्होंने कहा हे ज्ञानश्रुति! तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि तुम्हारे वंशलज में, इस मनुवंश में भी जितने भी राजा हुए हैं वह सर्वत्र ही इसी प्रकार के हुए हैं, जिन्होंने राष्ट्र त्याग करके केवल एक वस्त्र धारण करके, इन आत्मवेत्ताओं के समीप पहुँचे।

मेरे प्यारे! देखो, ज्ञानश्रुति के हृदय में यह वार्ता समाहित हो गई। उन्होंने बेटा! देखो, सब आभूषणों को त्याग करके और रथं ब्रह्मे व्रंतम् सब को त्याग करके बेटा! उन्होंने केवल एक वस्त्र धारण करके, और वह वन वृत्ति बन करके बेटा! देखो, वनचर बन करके, उन्होंने अपने राष्ट्र से गमन किया और भ्रमण करते हुए बेटा! देखो, जब ऋषि गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे तो गाड़ीवान ने द्रव्यं ब्रहे राजा से कहा हे राजन! धन्यं ब्रह्मा राजप्रव्हा व्रत्यं देवो ब्रह्मणे वर्ण वासुते वेद का आचार्य कहता है कि तुम ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए आए हो, तुम ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए तत्पर हो जाओ। आओ, विराजो।

महाराजा ज्ञानश्रुति तथा नाना ऋषिवर उनके यहाँ अनुसन्धान करते रहे। मैं उसी ज्ञानश्रुति की चर्चा करने चला हूँ। जिस समय ज्ञानश्रुति ने नाना प्रकार की मुद्राओं को त्याग कर के अपना स्वरूप बनाया तो वह गाड़ीवान रेवक मुनि के द्वार पर पहुँचे। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज ने उनके स्वागतार्थ ब्रह्मज्ञान की चर्चाएँ की। इस ब्रह्मवान की चर्चाएँ इससे पूर्व काल में भी उन्हाँने कीं। आज भी मुझे स्मरण आ रहा है गाड़ीवान रेवक से महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा प्रभु! मैं ब्रह्मज्ञान चाहता हूँ। अपना राष्ट्र मैंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को प्रदान कर दिया है। मैं ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहना चाहता हूँ। देखा जब हम यह विचारते हैं कि जैसे ब्रह्म का आयतन यह विज्ञानमीय स्वरूप वाला जगत, विज्ञानमयी स्वरूप वाला वह ब्रह्म हमें दृष्टिपात आता है। तो यह जो शरीर है, यह जो प्राण पञ्च महाभौतिक तत्त्वों में रत्त रहने वाला है यह आत्मा का आयतन है। आत्मा का यह गृह माना गया है। जैसे एक एक परमाणु ब्रह्म का आयतन माना गया है। वह मानव शरीर में आत्मा भी ब्रह्म का आयतन माना गया है इसलिए वह वास कर रहा है। तो जब यह विवेचना आने लगी तो गाड़ीवान रेवक मुनि माहराज ने यह विवेचना प्रारम्भ की।

महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ, जब में नाना मुद्राएँ ले करके आपके समीप आया तो आपने मुझे यह कहा। परन्तु संसार में नाना प्रकार की माया और मुद्राओं के बिना राष्ट्र का क्रियाकलाप नहीं चलता, क्रियाशील नहीं हो पाता। याग इत्यादिओं का जो कर्म वह भी मुद्रा के बिना नहीं हो पाता। तो उससे अनभिज्ञ होने को आपने मुझे कहा। गाड़ीवान रेवक ने कहा, कहो राजन! आपके हृदय में जब यह विचार आया कि मैं ब्रह्मवेत्ता बनना चहता हूँ। हे राजन! जब तुम्हारी यह जिज्ञासा थी तो द्रव्य का कोई समन्वय नहीं रह पाता। जब उन्हाँने यह कहा तो महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा, प्रभु! ज्ञान और माया का प्रायः समन्वय रहता है। मानव का जो शरीर है यह पञ्च महाभौतिक है यह माया के गुणाध्यान कहलाया गया है इसी प्रकार यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड और राष्ट्र में एक ही क्रियाकलाप हो रहा है। महाराजा ज्ञानश्रुति के वाक्य को पान करके गाड़ीवान रेवक ने कहा, हे राजन! जब तुम मेरे समीप मुद्रा ले करके आए तो ब्रह्म में मुद्रा का कोई समन्वय नहीं होता। रहा विचार यह कि तुम्हारा पथ यह कहता है कि माया कृतियों में भी निष्पक्ष हो करके मानव निर्बन्धन हो करके इसमें रमण कर सकता है और तुमने ऐसा वर्णन कराया कि यही जानना चाहते हो। परन्तु मैंने इसलिए शुद्र कहा कि तुम ब्रह्मवेत्ता को अपनाना चाहते थे, स्थापित करना चाहते थे ओर उस ब्रह्मवेत्ता की इच्छा नहीं है, जब इसकी इच्छा नहीं है तो देने वाला भी क्षुद्र के तुल्य है और यही लक्ष्मी तो चञ्चल है ही जो मानव को कहीं का कहीं ले जाती है। उन्होंने यह कहा तो गाड़ीवान रेवक मुनि के वाक्यों को पान करके ज्ञानश्रुति मौन होने लगे और उन्होंने कहा, हे राजन! तुम रथ को सजातीय बना करके तुम रथ को ले करके यहाँ आए तो तुम्हारा मन नाना कृतियों में रत्त रहने वाला नहीं था। महाराजा ज्ञानश्रुति मौन हो गए।

तो विचार क्या मुनिवरों! जब ब्रह्मवेत्ता के समीप पहुँची तो तीन समिधा ले करके जाना चाहिए। समिधा का अभिप्राय क्या? मैंने बहुत परातन काल में कहा, तीन समिधा वह होती हैं जो आत्मा को चेताने के लिए अग्नि में उद्बुद्ध की जाती हैं।"

अभिमन्त्रित जल

"ओ३म् आपो॒ यं वः॑ प्रथ॒मं दे॑व॒यन्त॑ इन्द्र॒पान॑मू॒र्मिमकृ॑ण्वते॒ळः। तं वो॑ व॒यं शुचि॑मरि॒प्रम॒द्य घृ॑त॒प्रुषं॒ मधु॑मन्तं वनेम ॥ ऋग्वेद ०७.०४१.०१

पदार्थः (आपो) उत्तम जल (यम्) जिस को (प्रथमं) पहले (देवयन्त) उत्तम कामना करने वाले जन (इन्द्रपानम्) पान द्वारा इंद्र के देवत्व गुणों को धारण करने योग्य मनुष्य जन उस को (ऊर्मिम्) तरंग के समन उस उत्तम जल को (इळ:) वाणी द्वारा (अकृण्वत) सिद्ध करें अभिमंत्रित करें। उस (शुचिम्) पवित्र (अरिप्रम्) निष्पाप निर्दोष (घृतप्रुषम् मधुमान्तम्) दुग्ध मधु आदि से पूरित (अद्य) आज (वनेम) विशेष रूप से सेवन करें।

श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-अभिमन्त्रित जल

एक समय कौतुक राजा ने अपने राष्ट्र में घोषणा कराई थी कि जितना राष्ट्र में अन्न रूप में द्रव्य है, वह मेरे कोष में आ जाना चाहिए। प्रजा ने उस अन्न को राजा के कोष में पंहुचाना प्रारम्भ किया। जब वह राजा के कोष में चला गया। जब मैं बाल्य काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन कर रहा था तो कौतुक राजा के यहाँ मैंने अन्न को ग्रहण किया था। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी किया। तो जब सांयकाल को हमने अन्न को ग्रहण किया और प्रातःकालीन जब हम साधना में परिणत होने लगे, साधना करने लगे तो हमारे मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई, जब मन की प्रवृत्ति चंचल बन गई तो हमने विचार किया कि अब क्या करें? दोनों ने साधना का काण्ड समाप्त कर दिया। उन्होंने कहा प्रभु! अब क्या करें? तो उन्होंने पुनः स्नान किया, जल में प्रोक्षण करके पुनः जब मार्जन करने के लिए तत्पर हुए तो हम चिन्तन करने लगे, तो आत्म चिन्तन के आश्रित न रह करके ओर ही चिन्तन होने लगा। जब चिन्तन दूषित बन गया, दूषित होने से वह तरंगें उत्पन्न होती रहीं तो उस समय हम दोनों भ्रमण करते हुए, कौतुक राजा के द्वार पर पंहुचे। कौतुक राजा ने ऋषियों का स्वागत किया। उन्होंने कहा प्रभु! स्वागत तो पश्चात होगा। हमारा स्वागत तो इससे पूर्व ही हो गया। जिससे हमारे मन की प्रवृत्ति अशान्त हो गई है। उन्होंने कहा प्रभु! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा तुम्हारे भण्डार में, हमने भोज्य प्राप्त किया था। परन्तु हमारी साधना तो दूषित हो गई, उस समय राजा कौतुक ने निर्णय किया और पाचक से कहा भोजनालय में कैसे अन्न का निर्माण किया था? तो पाचक ने राजा से कहा भगवन! मुझे यह प्रतीत नही है वह कैसा अन्न है? कौतुक राजा ने उससे निर्णय किया। वह अन्न को ले करके आये। उन्होंने कहा कि कहिये तुम यह अन्नाद को कहाँ से लाएं? उन्होंने कहा कि यह जो राष्ट्र का कोष है, उसी में से अन्न को लाया गया हैं।

राजा कौतुक ने निर्णय किया निर्णय करने से प्रतीत हुआ कि जितने भी राजा के राष्ट्र में द्रव्यपति थे उन्होंने द्रव्य का संग्रह सुन्दर प्रवृत्ति से प्राप्त नही कराया। उन्होंने अन्न का जो निर्माण किया ,द्रव्य का हृदय से चिन्तित होना ही हमारा कर्तव्य नही है, प्रजा चिन्तित हो करके अपने में भार स्वीकार करके वह राष्ट्र कोष में अन्न जाता हैं तो राजा के राष्ट्र को भ्रष्ट कर देता है तो कौतुक राजा ने ऋषि मुनियों के चरणों को स्पर्श किया और चरणों को स्पर्श करके कहा प्रभु! यह मेरा ही दोष है मेरे राष्ट्र में प्रजा का दोष है। भगवन! अब हम क्षमा चाहते हैं।

कौतुक राजा ने जब ऐसा कहा तो ऋषि मुनियों ने कहा, कि हे राजन! यह अन्नाद तुम्हारी इस प्रवृत्ति को भ्रष्ट करेगा और राजा की प्रवृत्ति जब भ्रष्ट हो जाती हैं तो प्रजा का विनाश हो जाता है। ऐसा नही होना चाहिए। उन्होने कहा तो प्रभु! मैं तो इस अन्न को ग्रहण करता ही नही हूँ। मैं तो स्वयं कला कौशल करके ही अन्न को पान करता हूँ। उन्होंने कहा राजन! यह तो यथार्थ है जब हम तुम्हारे अतिथि बन करके आये तो तुमने अपने अन्न में से क्यों नही हमें भोज्य कराया? उन्होंने कहा प्रभु! मुझे यह प्रतीत नही था

आपका मेरे से मिलन नही हुआ। तुम राष्ट्र गृह में चले जाते और राजलक्ष्मी तुम्हें अन्न को ग्रहण करा देती। उन्होंने कहा हे राजन! ऐसा हमने नही विचारा, क्यों नही विचारा? क्योंकि इससे पूर्व हम कई समय तुम्हारे अन्न को ग्रहण कर गये थे और उस अन्न को ग्रहण करके हमारी बुद्धि प्रखर बनी रही, एक तरंग नही, दो तरंग नही, नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। तो प्रभु! हमने जाना नही था कि तुम्हारे राष्ट्र में ऐसा भी होता हैं। कौतुक राजा ने कहा भगवन! अब मैं क्षमा चाहता हूँ प्रभु! चलो मेरे राष्ट्र गृह में तुम्हारा प्रवेश हो। तो हम राष्ट्र गृह में पंहुचे। राजा ने गृह में देवी से कहा देवी! ऋषि मुनियों की अन्तरात्मा में अशुद्ध अन्न ग्रहण हो गया है। मन में अशुद्ध धाराओं का जन्म हुआ है और वह जो मन की धाराएँ हैं वह अशुद्धवाद में परिणत हो गई हैं। देवी! स्वयं के उस अन्न को ग्रहण कराओ उन्होंने कहा प्रभु! मैं इस प्रकार अन्न को ग्रहण नही कराऊंगी क्योंकि वह अन्न दमन हो जायेगा वह तरंगें, जो उस अन्न की हैं वह जब दमन हो जायेंगी, तो वह किसी न किसी रूप में पुनः पुनरूक्तियों में आ करके, वह पुनः उभर करके उनकी तरंगों में पुनः दूषित वायुमण्डल को प्रदान करेगा, तो हे भगवन! आज मैं इन ऋषि मुनियों को भोज नही कराऊंगी। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा तो देवी! क्या करें? उन्होंने कहा कि उपवास करो और उपवास करके वेदों का अध्ययन करो। लगभग सूर्य उदय होने से और अस्त होने तक वेद का अध्ययन करो ध्वनि से जिससे वह परमाणुवाद तुम्हारा वेद की ध्वनि के साथ में मिश्रित हो जाये। और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस प्रकार व्यवधान किया जल को अपने समीप ले करके वेद मन्त्रों की तंरगें जल को स्पर्श करके जाती थी कि जल का पान करना और वेद का अध्ययन करना जटा पाठ, घन पाठ में गाना, मध्य में, मन की प्रवृत्ति कुछ चंचल बनी, वह संस्कार पुनः उनके समीप आये तो वेद का अध्ययन करते, रात्रि काल में देवी ने कहा हे प्रभु! आप ऋषि हैं, आप साधक है हम तो संसार के प्राणियों के प्रति साधना करते हैं आप आत्म चिन्तन करते हुए प्रभु, को प्राप्त करने के लिए साधना करते हो। हे प्रभु! आज पूर्णिमा के चन्द्रमा को निहारते रहो और उसमें प्रभु की सृष्टि को निहारते रहो। पूज्यपाद गुरुदेव ने वही किया परन्तु उसके पश्चात उनके हृदय की वे तरंगें समाप्त हो गई और प्रातः काल जब राष्ट्र गृह में प्रवेश हुआ, तो मन्त्रों की सुगन्ध के साथ, ऋषि मुनियों को अन्नाद का पान कराया, अन्न का निर्माण किया। निर्माण करके उसको तपा करके ऋषि मुनियों को पान कराया।"

अमृतवेला में वेद गान

"ओ३म् प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते सू॒क्तैर्मि॒त्रं हु॑वे॒ वरु॑णं पू॒तद॑क्षम्। यायो॑रसु॒र्य१मक्षि॑तं॒ ज्येष्ठं॒ विश्व॑स्य॒ याम॑न्ना॒चिता॑ जिग॒त्नु॥ ऋग्वेद ०७.०६५.०१

पदार्थः (वां) हे राजा तथा प्रजाजनसमुदाय ! तुम सब (सूरे, उदिते) सूर्योदयकाल में (मित्रं) सबका मित्र (वरुणं) सबका उपासनीय (पूतदक्षं) पवित्र नीतिवाले परमात्मा के (प्रति) समक्ष (सूक्तैः) मन्त्रों द्वारा (हुवे) उपासना करो, (ययोः) जो उपासक राजा तथा प्रजाजन (अक्षितं, असुर्यं) अपरिमित बलवाले (ज्येष्ठं) सबसे बड़े (विश्वस्य, यामन्) संसार-भर के संग्रामों में (आचिता) वृद्धिवाले देव की उपासना करते हैं, वे (जिगत्नुः) अपने शत्रुओं को संग्रामों में जीत लेते हैं॥

श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-अमृतबेला में वेदगान

देखो, मुनिवरों! अभी अभी हमारा पर्यायण समय समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष, पुनः की भान्ति कुछ वेद मन्त्रों का गान गा रहे थे। आज कैसा सुहावना समय है। जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमें इन वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया। आज इस अमृतबेला में उस गान को गाएं जिससे हम देवता बन जाएं मुनिवरों! देवता जन प्रातःकाल में कैसे अमृत को पान किया करते हैं।

हे इन्द्र! इस संसार को नियम से बनाने वाले! हमारे जीवन को भी नियमित बना। जब हमारा जीवन नियमित होगा तो हम सब ही कुछ कार्य कर सकेंगे। आपने प्रातःकाल में सूर्य को उत्पन्न किया है इसी प्रकार हे देव! हम उस महान ज्योति को चाहते हैं जिससे हमारा आत्मिक कल्याण हो। वह कौन सी ज्योति है?

मुनिवरों! वह ज्योति हमारी सन्ध्या की व्याहृतियां हैं जब सन्ध्या की व्याहृतियों को जाना जाता है तो वह सन्ध्या वास्तव में हमारा कल्याण करा देती है। जब देवता सन्ध्या के द्वार पर जाते हैं तो सन्ध्या पुकार कर कहती है कि हे देवताओं तुम आदि मेरा आदर करोगे, अनुकरण करोगे तो तुम संसार में देवता बन जाओगे यदि तुम मुझे ठुकराओगे तो तुम संसार में ठुकराए जाओगे।

मुनिवरों! आज हम विचारते नहीं प्रातःकाल के पर्व में हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ कैसे बन सकता है? प्रातःकाल की गंगा में स्नान से बन सकता है। माता दुर्गा की पूजा से बन सकता है। आज उस सन्ध्या के अनुसरण करने से बन सकता है।

आज आरम्भ के मन्त्र में ही प्रातरग्नि आ रहा था। हे प्रातःकाल की अग्नि! तू हवि है। तू हव्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। तू हमें हव्य पदार्थों का पान करा जिससे हम देवता बन जाएं और देवता गणों के समाज में विराजमान होकर देव वाणियों को कुछ विचारें हमारी विचारधाराएं हर स्थान में देव वृत्ति ही बनी रहे।

आज हमें इस आत्मा के ऊपर बहुत चिन्तन करना है, प्रातःकाल की अमृतबेला में बेटा! ये पुनः समय प्राप्त हो रहा है। कि वेद ज्ञान को ही उच्चारण करने का हमारा, यह कितना ऊँचा, महान सौभाग्य है, परमात्मा की कितनी अनुपम देन है, कि हम प्रातःकाल की अमृत बेला में, आज हम देखो, आत्मा सूक्तों का पठन पाठन करते चले जा रहे थे।

जहाँ मानव आत्मा के, शरीर के भोजन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है, नाना प्रकार के साधन एकत्रित करता है, उसी प्रकार आत्मा को भी भोजन देने का भी प्रयास, मानव को इससे कई गुणा करना चाहिए। कि मानव इस संसार में आ करके बेटा! अपने अन्तर्द्वन्द्व में न जाएं। क्योंकि बेटा! जिसके प्रकाश में हम सदैव रमण करते रहते है, उसी की क्रिया से, हमारा जीवन सदैव क्रियाशील रहता है, हमें उस परमपिता परमात्मा की आराधना, उपासना प्रातःकाल में करनी चाहिए।

मेरे प्यारे! आज से लाखों वर्षों पूर्व मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया। यह वह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमूल्य आदेश दिया करते थे। बारम्बार यज्ञ की धारा चलती थी अन्तरिक्ष में।

मुनिवरों! जहाँ मेरे पूज्यपाद का आश्रम था आश्रम में उस महान वाणी से, उस विद्या से सुशोभित आश्रम था। जैसे मुनिवरों! वृक्ष के पुष्प आ जाते हैं, या फल वाले वृक्ष पर फल आ जाते हैं और वह वृक्ष फलों से सुशोभित रहता है, इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव

के सदाचार और सतोगुण से आश्रम परिबद्ध रहता था, जिससे मृगराज भी बेटा! उस महानता के इच्छुक रहते थे, पक्षीगण भी शान्त थे, मानव कोई चला जाता तो उसका हृदय भी पवित्र हो जाता था।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! प्रातःकाल की अमृतबेला में, जब सूर्य उदय होता है, तो अपने महानता को ले करके, जब वह अग्रणीय होता है, तो बेटा! यह जगत पवित्र बनता चला जाता है, अहा! जब यह जगत पवित्र बन जाता है, तो मानव अपने में सुखद अनुभव करने लगता है, उसके मनों में विचार में बेटा! एक ही लक्ष्य होता है, कि मैं आनन्दित हो गया हूँ।"

अमृतवेला में वेद गान

"ओ३म् उदु स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॒ण्युषस॑श्च दे॒वीः। आ॒विवा॑स॒न्रोद॑सी॒ धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति॥ ऋग्वेद ०७.०७२.०३

पदार्थः (अश्विनोः) अध्यापक तथा उपदेशक (अबुध्रन्) बोधन करते हैं कि (जामि) हे सम्बन्धिजनो ! तुम लोग (उषसः) उषःकाल में (ब्रह्माणि देवीः) वेद की दिव्यवाणी का (आविवासन्) अभ्यास करो (उत) और (इमे) इन (स्तोमासः) वेद के स्तोत्रों को (अच्छ) भली-भाँति (रोदसी) द्युलोक तथा पृथिवीलोक के मध्य (धिष्ण्ये) फैलाओ (च) और (विप्रः) मेधावी पुरुष (नासत्या विवक्ति) सत्यवादी विद्वानों को उपदेश करें॥ (उषः) ब्रह्ममुहूर्त्त में (बोधि) उठकर (सुविताय) अपने सुख के लिए प्रार्थना करो।

व्याख्याः शृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-प्रातरग्नि

ओ३म् प्रातरग्नि हवामहे मित्रा माणम् आस्वानि गाताः आभा मनु प्रा वसो इन्द्रश्चमाम् आ भाः३म्॥ १३.०३.१९६९

हे प्रातरग्नि! हे विधाता! हमारी रक्षा करो। आज हम अपनी रक्षा चाहते हैं यह जीवन आपका है। यह शरीर आपका है। मनुष्य सब ही कुछ परमात्मा के अर्पण कर देता है। उस समय मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ हो जाता है आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप आवरण पाप कर्मों द्वारा, दुष्ट कर्मों द्वारा आ जाते हैं वे उस प्रकाश से सब शान्त हो जाते हैं जैसे एक वस्त्र हैं और उसमें बड़े ही दोष हैं परन्तु जब वह जल के समीप जाता है तो जल उसे निर्मल और स्वच्छ बना देता है। इसी प्रकार हमें भी अपनी आत्मा के द्वारा जो मल विक्षेप आवरण हैं उनके शान्त करने के लिए हमें सबसे पूर्व माता सन्ध्या का पूजन करना है। उसके पाठ को करना है। जिससे हमारा वास्तविक कल्याण हो जाएगा। भगवन! मैं प्रातःकाल की बेला में आपके चरणों की वंदना कर रहा हूँ, वंदना का अभिप्राय है कि मैं अपने हृदय को उज्ज्वल बना रहा हूँ, आपकी शुद्ध, पवित्र अमृत संवेदना के साथ प्रभु! मैं अपने हृदय को निर्मल और स्वच्छ जल से स्वच्छ बनाना चाहता हूँ। आज सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमें इन वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया। आज इस अमृतबेला में उस गान को गाएं, जिससे हम देवता बन जाएं देवता जन प्रातःकाल में कैसे अमृत को पान किया करते हैं हे प्रातःकाल की अग्नि! तू हवि है। तू हव्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। तू हमें हव्य पदार्थों को पान करा, जिससे हम देवता बन जाएं और देवता गणों के समाज में विराजमान होकर देव वाणियों को विचारें, जिससे हमारी विचारधाराएं हर स्थान में देववृत्ति ही बनी रहे। आज इस प्रातःकाल में प्रभु का गुणगान गाएं, हे परमात्मन्! तू कल्याण करने वाला है।

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे हमारी वाणी पवित्र हो जाए, और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे प्यारे! परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है कि जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे इन वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया।

जिससे हमारा आत्मा बड़ा प्रसन्न होने जा रहा था, ऐसा प्रतीत होता चला जा रहा था कि आज हमें अमूल्य प्रकाश प्राप्त हो रहा है। इच्छा तो नहीं थी, कि वेदमन्त्रों के गान को त्याग करके आज हम देवस्वति सुब्रणी में आ जाएं। परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी! का यही कथन है, उनके अनुपम वाक् प्रारम्भ हैं, परन्तु वेदों का मनोहर गान इस प्रकार का था कि वाणी, हृदय, मुनिवरों! अन्तःकरण और इन्द्रिय सबका एक समागम हो रहा था, सब एक सूत्र में बंधते जा रहे थे। परिबद्ध होने जा रहे थे।

मेरे प्यारे! आज से लाखों वर्षों पूर्व मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया। यह वह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमूल्य आदेश दिया करते थे। बारम्बार यज्ञ की धारा चलती थी अन्तरिक्ष में।"

श्रेष्ठ अन्न चाहने वाला इन्द्र

"ओ३म् यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि। उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥ ऋग्वेद ०७.०९८.०२

पदार्थः (इन्द्र) हे विद्वन् ! (यत्) जो तुम (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (चारु, अन्नम्) श्रेष्ठ अन्न को धारण करते हो और (प्रदिवि) गत दिनों में भी तुमने श्रेष्ठ अन्न को ही धारण किया और (अस्य) सौम्य स्वभाव बनाने वाले सोम द्रव्य के (पीतिम्, इत्) पान को ही (वक्षि) चाहते हो (उत) और (हृदा) हृदय से (उत) और (मनसा) मन से (जुषाणः) परमात्मा का सेवन करते हुए (उशन्) सबकी भलाई की इच्छा करते हुए तुम (प्रस्थितान्, पाहि, सोमान्) इन उपस्थित सोमपा लोगों को अपने उपदेशों द्वारा पवित्र करो॥

व्याख्याः शृङ्गी मुनि कृष्ण दत्त जी महाराज-श्रेष्ठ अन्न चाहने वाला इन्द्र

जब पितामह भीष्म यह उपदेश दे रहे थे, तो महारानी द्रौपदी ने कहा कि हे पितर! आपका यह उपदेश उस समय कहाँ था? उस काल में जब मैं रजोमय थी और मुझे महाराजा दुर्योधन इस सभा में, हस्तिनापुर के आङ्गन में मुझे नग्न करना चाहते थे? उस समय यह आपका ब्रह्ममय उपदेश कहाँ था? उस समय पितामह भीष्म बोले, हे देवी! हे पुत्री! मैं उस समय, क्योंकि राष्ट्र का मैंने पापमयी अन्न को ग्रहण किया था। अन्न से ही मानव के द्वारा मज्जा की उत्पत्ति होती है, ओज उत्पन्न होता है। उसी से बुद्धि का निर्माण होता है। मेरी बुद्धि उसी प्रकार की हो रही थी। मैं उस समय देखो, वशीभूत था अन्नादि के। मेरे प्यारे! देखो, और आज तेरे इस पवित्र अन्न से जो तू मुझे पान कराती है और मानो देखो, अर्जुन के तीखे बाणों ने रक्त का शोषण कर दिया है। आज मेरी बुद्धि निर्मल बन रही है। तो मेरे प्यारे! देखो, मेरा उत्तरायण आ गया है।

मुनिवरों! देखो, उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा में नहीं था। वह देवता, वह ब्रह्मचारी इस प्रतीक्षा में था कि मुझे ज्ञान हो जाए, मुझे विवेक हो जाए। जिस समय मैं प्राणों का त्याग करने वाला हूँ। क्योंकि सूर्य का मानव के जीवन से, आत्मा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान रुपी सूर्य से आत्मा का सम्बन्ध है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है महाराजा भीष्म ने एक वर्ष चार दिवस में मुनिवरों! देखो, अपने शरीर को त्यागा था। इतने समय तक महारानी द्रौपदी उसे पवित्र गायत्री छन्दों से गुंथे हुए अन्न को पान, कराती रहती थी, मानो देखो, जिससे उसकी बुद्धि निर्मल हो गई, ज्ञान हो गया। क्योंकि ज्ञान तो उन्हें पूर्व था। बाल्य काल में बहुत अध्ययन किया था। माता को वे ज्ञान देते रहते थे।

मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार जो माता अपने पुत्र को यह चाहती है कि मेरा पुत्र पवित्र बने, मेरे पुत्र में महत्ता आ जाए तो माता गायत्री छन्दों का पठन पाठन करके जब माता अपने पुत्र को शुद्ध विचारों का भोज्य कराती है, तो वह माता सौभाग्यशालिनी होती है। उस माता के आभा में ही मानो देखो, पुत्रों! का जन्म होता है, आभा में ही पुत्रों! को महान बना देती है।

मेरे पुत्रो! मैं आज विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ। आज जैसे माता मन्दालसा का वर्णन आता रहता है। वे गर्भ से ले करके ५ वर्ष तक तो शिक्षा देती रहती थी। अन्नादि पवित्रता से ग्रहण कराती रहती थी। ब्रह्मवेत्ता बन जाते थे। पुत्र अहा! वह माता सौभाग्यशाली है जिस माता के गर्भ से ब्रह्मवेत्ता पुत्रां का जन्म होता है, बुद्धिमानो का जन्म होता है।"

वेदमन्त्र का गान गाओ

"ओ३म् एतो॒ न्विन्द्रं॑ स्तवा॑म शु॒द्धं शु॒द्धेन॒ साम्ना॑। शु॒द्धैरु॒क्थैर्वा॑वृ॒ध्वांसं॑ शु॒द्ध आ॒शीर्वा॑न्ममत्तु ॥ ऋग्वेद ०८.०९५.०७

पदार्थः हे साथियो ! (एत उ) आओ, (नु) शीघ्र ही, तुम और हम मिलकर (शुद्धम् इन्द्रम्) पवित्र जगदीश्वर की (शुद्धेन साम्ना) पवित्र सामगान से (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धैः) पवित्र (उक्थैः) स्तोत्रों से (वावृध्वांसम्) वृद्धि को प्राप्त हममें से प्रत्येक जन को (आशीर्वान्) आशीषों का अधिपति जगदीश्वर (शुद्धैः) पवित्र आशीर्वादों से (ममत्तु) आनन्दित करे॥

सामवेद में सर्वाधिक 'गायत्री' व 'प्रगाध' छन्दों का प्रयोग हुआ है। सामवेद के अधिकांश मन्त्र दो छन्दो में हैं गायत्री तथा प्रगाथ (गायत्री और जगती का सम्मिश्रण)। निर्विवाद ये गीत और मन्त्र इन छन्दों में गायन की दृष्टि से ही लिखे थे। गायत्री तथा प्रगाथ दोनो शब्द गा (गै) धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है गाना। 'सामन्' शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्ति अर्थक 'सन्' धातु से 'मन् प्रत्यय लगाने पर होती है। साम का शाब्दिक अर्थ है वह गीत जिसके द्वारा परमात्मा को पाया जाता है। शबरस्वामी के अनुसार 'विशिष्ट काचित् साम्यो गीतिः सामेत्युच्यते'। अर्थात् मन्त्रों को जब विशिष्ट गान पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन्' कहते हैं। सामवेद का 'ऋत्विक उद्गाता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-वेदमन्त्र का गान गाओ

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे तुम्हारी वाणी पवित्र हो जाए और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए, और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे

प्यारे परमपिता परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर प्रदान किया है।-पूज्यपाद गुरुदेव

है। ऋग और साम उसी को कहा जाता है जहाँ एक दूसरे का मिलान होता हो। हमारे यहाँ जैसे पृथ्वी को ऋग कहा जाता है और वायु को साम कहा है दोनों के मिलान से ही सामगान होता है। इसी प्रकार जैसे मानव का तालु होता है और जीभ होती है दोनों के मिलान से ही मानव के मुखारबिन्द से शब्द की रचना होती है इसी प्रकार वहाँ भी ऋग और साम दोनों का मिलान हो करके वहाँ वायु और जल दोनों का ऋग और साम माना है। जैसे हमारे इस पृथ्वी मण्डल पर पृथ्वी और वायु को ऋग और साम माना है वहाँ पूरे चन्द्र मण्डल में वायु को और जल को दोनों ऋग और साम को उपाधि प्रदान की जाती है। उस काल में वहाँ गान गाया जाता है। गान उसे कहते हैं जहाँ दोनों का मिलान होता है, वहाँ शब्द की रचना होती है, वहीं मिलान होता है, वहीं नाना प्रकार की उत्पत्ति का कारण बना करता है।

जब चाक्राणी गार्गी अपने शरीर को त्यागने लगी तो उस समय मुनिवरों! देखो, वह सामगान गा रही थी और जब वे सामगान गा रही थी तब नाना, ऋष मुनि विद्यमान हैं। उनके मध्य में चाक्राणी गार्गी विद्यमान हो करके कहती हैं, हे ऋषियो! अब मैं अपने गृह में प्रवेश कर रही हूँ। मैं इस संसार के गृह को त्याग रही हूँ। इस क्षेत्र में आ करके मैंने मृत्यु को विजय किया है। ऐसे ही ऋषियो! तुम भी मृत्यु त्ते विजय करने का प्रयास करो।

साम गान वेत्ताओं ने सामगान को लिया और गान गाने लगे। जब गान गाने लगे, गान गाता रहा, उद्गार चलते रहे, जब मुनिवरों! प्राण की गति को जानने लगे, जब प्राण उद्गार बन गये, उन प्राणों का अभ्यास करते करते चार चार घड़ी का अभ्यास किया। उस अभ्यास के करने से मेरे प्यारे! वाणी अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे जब अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे मुनिवरों! बाह्य जगत में समिधा को समिधा के घर्षण से अग्नि उत्पन होने लगी। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण है यह वाणी ही मानो शब्द के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होने लगी। जब यह उत्पन्न होने लगी तो मुनिवरों! यह विचारा कि यह तो विशाल अग्नि है। अग्नि को जानने का प्रयास किया और इस अग्नि को कहा दीपावली बनने लगी।

आज हम संसार को सतोयुग में लाना चाहते हैं, राष्ट्रीयता में लाना चाहते हैं, आज हम अपनी सीमा पर शत्रु को दृष्टिपात नहीं करना चाहते, संसार को सुख और शांति में चाहते हैं, भ्रष्टाचार को नष्ट करना चाहते हैं। तो प्रायः प्रत्येक मानव के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिए। प्रत्येक मेरी प्यारी माताओं के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिए। आज जब मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी रहती है तो ब्रह्मचारिणियों का कर्त्तव्य है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म २१ प्राणायाम अवश्य करें। इससे उसके मन की गति चंचल नहीं होगी। जहां मन की गति चंचल हो वहीं प्राणायाम करो। मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो मन की शांति लाने वाला कार्य है उसी को प्राणायाम कहते हैं। मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! गृह आश्रम को पवित्र बनाना चाहते हो तो गृह में सदैव यज्ञ होते रहें, पठन पाठन होता रहे। पति पत्नी और प्यारे पुत्र सभी प्रसन्न हों। वे कार्य नहीं होने चाहिए जो मानवता से दूरी हों। मानव वाले कार्य हों, मनन होना चाहिए, जहां मनन होता है वहां धृष्टता नहीं आती। यहां किसी का भी चिंतन कर लो वही तुम्हारे समीप आने प्रारंभ हो जायेंगे, क्योंकि यह जो अंतरिक्ष है यह तो परमाणुओं का एक समूह है इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु हैं, महान से महान परमाणु हैं,

क्लिष्ट से क्लिष्ट परमाणु हैं। देखो यदि एक मानव क्रोध अधिक करता है तो उसे क्रोध ही आने लगता है, क्योंकि क्रोध के परमाणु उसके समीप अधिक आने लगते हैं। वह जो नाग नाम का प्राण है वह उन परमाणुओं को अपने में धारण करता रहता है और परिणाम यह होता है कि मानव क्रोध में भस्म होने लगता है।

मुनिवरो देखो! मन की जो तरंगे हैं वह अंतरिक्ष में रहती हैं जो वाक्य उच्चारण करते हैं वह भी अंतरिक्ष में रहते हैं। परन्तु यह सब उसके विचारों के साथ साथ आते रहते हैं, आते जाते यह कहीं नहीं हैं यह अंतरिक्ष में विराजमान रहते हैं। अंतरिक्ष में हम सब रहते हैं। सभी प्राणी उसी के क्षेत्र में रमण करते रहते हैं।

बेटा! इस परमात्मा के रचाये हुए क्षेत्र में, इस वायुमंडल में आये हैं तो इसको शुद्ध बनाना है। विचारों से शुद्ध बनाओ, मग्न होकर के शुद्ध बनाओ, ब्रह्मचारी रहकर के शुद्ध बनाओ, प्राणायाम करके शुद्ध बनाओ, परन्तु वायुमंडल पवित्र होना चाहिए। जिससे हम प्रभु की सृष्टि को दूषित न करते चले जायें।

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे हमारी वाणी पवित्र हो जाए, और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे प्यारे! परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है कि जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे इन वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया।

पूज्य महानन्द जी:आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वाक प्रकट कर रहा हूँ कि जहाँ हमारी ये आकाशवाणी जा रही है, वहाँ सामगान का पारायण हुआ, उसकी पूर्ण अस्वाति अध्द्धे समाप्त हुआ।"

साम गान गाओ

"ओ३म् इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ऋग्वेद ०८.०९८.०१

पदार्थः हे मित्रो! तुम (विप्राय) विशेषरूप से क्षतिपूर्ति करनेवाले अथवा ब्राह्मण के समान श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश करनेवाले, (बृहते) महान् (ब्रह्मकृते) वेदकाव्य के रचयिता, (विपश्चिते) सकल विद्याओं में पारंगत, (पनस्यवे) दूसरों की प्रशंसा और कीर्ति चाहने वाले (इन्द्राय) राजराजेश्वर परब्रह्म परमेश्वर के लिए (बृहत्) बहुत अधिक (साम गायत) सामगान करो ॥

सामवेद में सर्वाधिक 'गायत्री' व 'प्रगाध' छन्दों का प्रयोग हुआ है। सामवेद के अधिकांश मन्त्र दो छन्दो में हैं गायत्री तथा प्रगाथ (गायत्री और जगती का सम्मिश्रण)। निर्विवाद ये गीत और मन्त्र इन छन्दों में गायन की दृष्टि से ही लिखे थे। गायत्री तथा प्रगाथ दोनो शब्द गा (गै) धातु से बने हैं, जिसका अर्थ है गाना। 'सामन्' शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्ति अर्थक 'सन्' धातु से 'मन् प्रत्यय लगाने पर होती है। साम का शाब्दिक अर्थ है वह गीत जिसके द्वारा परमात्मा को पाया जाता है। शबरस्वामी के अनुसार 'विशिष्ट काचित् साम्यो गीतिः सामेत्युच्यते'। अर्थात् मन्त्रों को जब विशिष्ट गान पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन्' कहते हैं। सामवेद का 'ऋत्विक उद्गाता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-साम गान गाओ

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना चाहिए। जिससे तुम्हारी वाणी पवित्र हो जाए और वायुमण्डल में वह ध्वनि प्रविष्ट हो करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती चली जाए, और उसका शुद्ध परमाणुओं से शुद्धिकरण हो जाए। मेरे प्यारे परमपिता परमात्मा का यह जगत भव्यता को प्राप्त हो जाए। आज कैसा सुहावना समय है जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमे वेदमन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर प्रदान किया है।-पूज्यपाद गुरुदेव

है। ऋग और साम उसी को कहा जाता है जहाँ एक दूसरे का मिलान होता हो। हमारे यहाँ जैसे पृथ्वी को ऋग कहा जाता है और वायु को साम कहा है दोनों के मिलान से ही सामगान होता है। इसी प्रकार जैसे मानव का तालु होता है और जीभ होती है दोनों के मिलान से ही मानव के मुखारबिन्द से शब्द की रचना होती है इसी प्रकार वहाँ भी ऋग और साम दोनों का मिलान हो करके वहाँ वायु और जल दोनों का ऋग और साम माना है। जैसे हमारे इस पृथ्वी मण्डल पर पृथ्वी और वायु को ऋग और साम माना है वहाँ पूरे चन्द्र मण्डल में वायु को और जल को दोनों ऋग और साम को उपाधि प्रदान की जाती है। उस काल में वहाँ गान गाया जाता है। गान उसे कहते हैं जहाँ दोनों का मिलान होता है, वहाँ शब्द की रचना होती है, वहीं मिलान होता है, वहीं नाना प्रकार की उत्पत्ति का कारण बना करता है।

जब चाक्राणी गार्गी अपने शरीर को त्यागने लगी तो उस समय मुनिवरों! देखो, वह सामगान गा रही थी और जब वे सामगान गा रही थी तब नाना, ऋष मुनि विद्यमान हैं। उनके मध्य में चाक्राणी गार्गी विद्यमान हो करके कहती हैं, हे ऋषियो! अब मैं अपने गृह में प्रवेश कर रही हूँ। मैं इस संसार के गृह को त्याग रही हूँ। इस क्षेत्र में आ करके मैंने मृत्यु को विजय किया है। ऐसे ही ऋषियो! तुम भी मृत्यु से विजय करने का प्रयास करो।

साम गान वेत्ताओं ने सामगान को लिया और गान गाने लगे। जब गान गाने लगे, गान गाता रहा, उद्गार चलते रहे, जब मुनिवरों! प्राण की गति को जानने लगे, जब प्राण उद्गार बन गये, उन प्राणों का अभ्यास करते करते चार चार घड़ी का अभ्यास किया। उस अभ्यास के करने से मेरे प्यारे! वाणी अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे जब अग्नि का स्वरूप बन गई जैसे मुनिवरों! बाह्य जगत में समिधा को समिधा के घर्षण से अग्नि उत्पन होने लगी। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! देखो, मुझे स्मरण है यह वाणी ही मानो शब्द के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होने लगी। जब यह उत्पन्न होने लगी तो मुनिवरों! यह विचारा कि यह तो विशाल अग्नि है। अग्नि को जानने का प्रयास किया और इस अग्नि को कहा दीपावली बनने लगी।

पूज्य महानन्द जी:आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वाक प्रकट कर रहा हूँ कि जहाँ हमारी ये आकाशवाणी जा रही है, वहाँ सामगान का पारायण हुआ, उसकी पूर्ण अस्वाति अध्व्हे समाप्त हुआ।"

कल्याणमयी वेदवाणी

"ओ३म् यस्ते॑ अग्ने सुम॒तिं मर्तो॑ अक्ष॒त्सह॑सः सूनो॒ अति॒ स प्र शृ॑ण्वे। इषं॒ दधा॑नो॒ वह॑मानो॒ अश्वै॒रा स द्यु॒माँ अम॑वान्भूषति॒ द्यून् ॥ ऋग्वेद १०.०११.०७

पदार्थः (सहसः सूनो अग्ने) हे ओज-अध्यात्म-तेज के उत्पादक परमात्मन्! (ते) तेरी (सुमतिम्) कल्याणी वेदवाणी को (यः मर्तः अक्षत्) जो मनुष्य अपने अन्दर समा लेता है (सः अति प्रशृण्वे) वह अत्यन्त अध्यात्मगुणसम्पन्न हो जाता है, और (इषं दधानः) कमनीय भोगों को धारण करता हुआ-प्राप्त करता हुआ (सः अश्वैः वहमानः) वह व्याप्तिशील सूर्य किरणों द्वारा, प्रशस्त इन्द्रियों द्वारा वहन किया जाता हुआ आस्तिक मनवाला, विद्युदादि यानों द्वारा वहन किया जाता हुआ राजा (द्युमान्-अमवान्-आ द्यून् भूषति) तेजस्वी आत्मवान् होता हुआ अपने को भूषित करता है।

व्याख्याः श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-कल्याणमयी वेदवाणी

बेटा! वेद मन्त्रों की जो प्रतिभा है, वह मानव को कहीं का कहीं मानो देखो, वर्णित कर रही है। उसी वर्णन शैली में, जब हम प्रवेश करते है तो अन्तर्हृदय गद् गद् हो जाता है।

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं, और वे सर्वज्ञ जगत के नियन्ता अथवा निर्माण करने वाले हैं, और जितना भी ये जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमे दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं। प्रत्येक मानव का ये कर्तव्य है, क्या उस परमात्मा की अनुपम सृष्टि को निहारना चाहिए, और उसको अन्तर्हृदय में जो मानव धारयामि बना लेता है, अथवा धारण कर लेता है, तो उस मानव का हृदय विशाल और पवित्रता को प्राप्त हो जाता है। तो परमात्मा की सृष्टि को दृष्टिपात करना अथवा उसे निहारना और हृदय स्थलि में सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान को उसमें धारण करना उसमें समावेश करना ये प्रत्येक मानव का कर्तव्य कहलाता है। जिससे मानव के अन्तर्हृदय में एक पवित्रता का समूह उपलब्ध हो जाए। और जिस समूह के द्वारा हमारा जीवन महान बनता है। उस साम्यता को प्रायः हम दृष्टिपात करते रहें। तो आज का हमारा वेदमन्त्र ये उदगीत गा रहा है, क्या इस संसार में मानव जब याग के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन करने लगता है, आज कहीं से मुझे ये प्रेरणा आ रही है, कि सविता के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय दिया जाए।"

अध्यात्म यज्ञ

"ओ३म् अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत्। धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः॥ ऋग्वेद १०.१८१.०२

पदार्थः (ते) वे अग्न्यादि ऋषि (अविन्दन्) उस वेद ज्ञान को प्राप्त करते हैं (अतिहितम्-आसीत्) जो गुप्त था (यज्ञस्य परमं धाम) अध्यात्म यज्ञ का परम स्थान (यत्-गुहा बृहत्) जो मन के (हृदय में) अन्दर स्थित होता है। (अग्नेः) अग्रणी विद्वान् (भरद्वाजः) जो प्रजा को धारण करता है (आचक्रे) भली भाँति वेद वाणी को ग्रहण करता है (धातुः-द्युतानात् सवितुः-विष्णोः) अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के पास से॥

श्रृङ्गी ऋषि कृष्ण दत्त जी महाराज-अध्यात्म यज्ञ

देखो, मुनिवरों! इसी प्रकार जब प्रत्येक इन्द्रिय और मन आदि सब मनुष्य के शासन में रहता है और यह आत्मा यज्ञमान होकर, इन सबकी सामग्री बना करके, ज्ञान रूपी यज्ञशाला में आहुति देने वाला बनता है, उस आत्मा का प्रभाव संसार में इस प्रकार ओत प्रोत हो जाता है, जैसे वेद का प्रत्येक मन्त्र, ओ३म् की ध्वनि में बिंधा हुआ है। इन्द्रियों से आहार कर रहा है उसकी स्थिति सबकी हृदय में है। चक्षु रुप ले रहा है उसकी स्थिति हृदय में है। त्वचा से प्रीति ग्रहण कर रहा है उसकी स्थिति हृदय मे है। घ्राण से मन्द सुगन्ध ले रहा है उसकी स्थिति हृदय में है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब यह उत्तर दिया तो देवी बड़ी प्रसन्न हुई। देवी ने कहा यह तो बड़े बुद्धिमान हैं! उन्होंने पुनः कहा प्रभु! यह उद्गाता कौन है? उद्गीत कौन गाता है? उन्होंने कहा उद्गीत वह गाता है,? जो अपने हृदय को, मानो देखो, देवता से उसका समन्वय रहता है, जैसे नेत्रों की जो ज्योति है, वह रूप को लाता है हृदय में परणित कर देता है और घ्राण से सुगन्ध लाता है, मन्द सुगन्ध लाता है, वह भी हृदय में प्रविष्ट हो जाती है, देखो, श्रोतो से शब्दों को लाता है, वह भी हृदय में प्रविष्ट हो जाती है, त्वचा से प्रीति लाता है, वह हृदय में प्रविष्ट हो जाती है, मानो इसी प्रकार देखो, वाणी, नाना प्रकार के वाक्य को ला करके और हृदय में उसकी स्थिति हो जाती है। इसी प्रकार यज्ञमान का जो हृदय है, वह यज्ञशाला है। और, उद्गाता वह कहलाता है, जो हृदय से गान गा करके और मानो देखो, सर्वत्रता को, अपनी आभा को याग में परणित कर देता है। उद्गाता के रूप में ही जैसे आध्यात्मिक विज्ञानवेत्त रूप, रस और गन्ध को ले करके अपनी अन्तरात्मा में ज्ञानरूपी अग्नि में याग करते हैं। जब याग करते हैं तो यागां ब्रह्मे व्रतां, मेरे प्यारे! देखो, वह याग हो रहा है। आध्यात्मिक प्रवृत्तियों में मानो अपने प्रभु को जानने के लिए तत्पर हो रहा है।

यज्ञशाला में यज्ञमान याग करता है होता जनों के सहित। जितना भी हृदय पवित्र होगा, जितनी भी मानवाता पवित्र होगी उतना उसका चित्र द्यौ लोक को चला जाता है। अन्तरिक्ष में उसकी स्थिरता हो जाती है। जितना भी अशुद्ध वाक होता है, हृदय से नहीं होता उतना ही वह जो आहुति है वह पृथ्वी में चयन करने लगती है तो चयन का अभिप्राय यह कि वह अन्तरिक्ष में निचले स्थान में ओत प्रोत हो जाती है क्योंकि उसमें कोई रहस्य नहीं होता। उसमें कोई महत्ता नहीं होती। वह शब्द है, उस शब्द के साथ में चित्र तो चला गया है। यदि वह शब्द कामना से भरा शब्द है तो उसका स्वरूप कुछ और बन जाता है। यदि इसी क्रोध के रूपों में रमण करने वाला है तो उसका कुछ और स्वरूप बन जाता है। पुत्रो! मैं इस विज्ञान में जाना नहीं चाहता। यह तो विशाल विज्ञान है। परन्तु विचार विनिमय केवल हमारा संक्षिप्त परिचय है कि वह जो शब्द के साथ में चित्र जाता है। वह रजो गुण, तमो गुण और सतो गुणी है। मानो सतो गुणी शब्द द्यौ लोक को चला जाता है। रजो गुणी और तमो गुणी जो शब्द हैं वह अन्तरिक्ष में छा जाता है और वही दैवी प्रकोप बन करके अतिवृष्टि में अनावृष्टि में, नाना प्रकार की आभाओं में मानव के समीप आ जाता है।

ऋत किसे कहते हैं? जैसे मानव भी, प्राणी भी एक दूसरे प्राणी का सहायक बना हुआ है, एक दूसरे की सहकारिता को धारण कर रहा है तो इसलिए हमें ऋत को जानना चाहिए।"